वेदान्त केसरी स्वामी निरंजन कृत

कर्म से मोक्ष नहीं

वेदान्त केसरी स्वामी निरंजन कृत

कर्म से मोक्ष नहीं

प्रकाशक : निरंजन बुक ट्रष्ट
प्रथम मुद्रण : गुरु पूर्णिमा, २०१०
मुद्रण एवं अलंकरण : **दिव्य मुद्रणी,**
भुवनेश्वर -२ (उड़िसा)
प्रच्छद : विभु

मूल्य : **रु : 40/-**

विषय अनुक्रम

प्रस्तावना

अज्ञान के कारण जीव जन्म मरण को प्राप्त होता है । अनादि काल से जीव देहाध्यास करने के कारण अपने आत्म स्वरूप को भूल चौरासी लाख योनियों में अपने कर्मानुसार संसार चक्र में पड़े दुःख पाते रहते हैं । पुण्य कर्म एवं ईश्वर दया से यह जीव मानव शरीर प्राप्त करता है । फिर इस जीवन में ज्ञान प्राप्तकर सद्गुरु कृपा से मोक्ष प्राप्त करलेते हैं ।

जीवों की चौरासीलाख योनियों में से मनुष्य योनि के अतिरिक्त अन्य किसी योनि में तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं होता है। इस चौरासी लाख योनियों में हजारों हजारों करोड़ों बार जन्म लेने के बाद कदाचित मनुष्य योनि ईश्वर कृपा से प्राप्त होती है । मोक्ष प्राप्ति के लिये साधनधाम मनुष्य जीवन पाकर भी जो अपने को मुक्त नहीं करलेता उससे अधिक पापी पृथ्वी पर और कौन होगा ?

उत्तम मनुष्य शरीर में जन्म प्राप्त करके और समस्त इन्द्रियों को प्राप्त करके भी जो व्यक्ति अपने हित अहित को नहीं जानता वह ब्रह्मघातक होता है । शरीर के बिना कोई भी जीव पुरुषार्थ नहीं कर सकता इसलिये शरीर व धन उपार्जन द्वारा पुण्योपार्जन करना चाहिये । कृपण कभी नहीं होना चाहिये ।

गाँव, क्षेत्र, धन, पुत्र, पति, पत्नी पुनः प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु मनुष्य शरीर पुनः पुनः प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये बुद्धिमान मनुष्य सदा शरीर मन्दिर की सात्त्विक आहार द्वारा रक्षा करते हैं । शरीर रक्षा

धर्माचरण के उद्येश्य से और धर्माचरण ज्ञान प्राप्ति के उद्येश्य से एवं ज्ञान प्राप्ति मोक्ष के उद्येश्य से अविलम्ब प्राप्त करलेना चाहिये ।

जब तक शरीर कमजोर नहीं हुआ, इन्द्रियाँ अपने व्यवहार को ठीक कर रही है, तभी तक तत्त्वज्ञान का अभ्यास करलेना चाहिये । जब शरीर रोगी, असमर्थ हो जायगा तब उस समय मोक्ष प्राप्ति का साधन भजन दानादि कुछ नहीं हो सकेगा । भवन में आग लगने पर कुआँ खोद पानी लाकर बुझाने का विचार कोई बुद्धिमान नहीं करता ।

भौतिक सम्पत्ति, आयु क्षणभंगुर बिजली की तरह समाप्त हो जाता है । आधा जीवन निद्रा, आलस्य के वशीभूत हो बीत जाता है । जो शेष है वह बाल्यावस्था, रोग, बुढ़ापा में बीत जाता है । ब्रह्म चिन्तन करने का सौभाग्य मिलने पर वहाँ जाकर सो जाता है तथा जहाँ सदा भय विद्यमान है उस संसार में जागता है । ऐसा अभागा क्यों नहीं मौत द्वारा मारा जायगा ?

वायु को बाँधना सम्भव हो सकता है । आकाश को खण्ड खण्ड कर सकते हो परन्तु आयु के शास्वत होने की आस्था कभी सम्भव नहीं हो सकती ।

मेरा पुत्र, मेरा पति, मेरी पत्नी, मेरा धन, मेरा मकान, मेरा पुत्र, मेरे बान्धव, इस प्रकार मैं–मैं कहते हुए मनुष्य रूपी बकरे को हठ पूर्वक काल रूपी भेड़िया मार डालता है । यह मैंने कर लिया, यह करना शेष है, यह दूसरा कार्य अभी कुछ बाकी है, इस प्रकार की इच्छा से युक्त मनुष्य को यमराज अपने वश में करलेते हैं ।

कल किये जाने वाले आत्म कल्याण के साधन को आज, अभी इसीक्षण कर लेना चाहिये क्योंकि इस मनुष्यने अपने मुख्य कार्य किया या नहीं किया इसकी प्रतीक्षा मृत्यु नहीं करती । जब जीव अपने देह को, धन सम्पत्ति को यहीं छोड़कर यमलोक में चला जाता है तो फिर

स्त्री, माता, पिता, पूत्रादि के साथ किस प्रयोजन से ममता सम्बन्ध स्थापित किया जाय ?

संसार में अहं–मम ही दुःख का मूल है । इसलिये इस संसार में जिसका सम्बन्ध है वही दुःखी है, और जिसने इस जगत् का त्याग किया, वही मनुष्य सुखी दिखाई देता है । लौह एवं लकड़ी से बन्धाहुआ मनुष्य मुक्त हो सकता है किन्तु पुत्र, और पत्नीरूप पाशों से बन्धा मनुष्य कभी मुक्त नहीं हो सकता ।

लोह के अंकुश को लोभ वश मछली नहीं जान पाती, उसी प्रकार विषयों से प्राप्त होने वाले प्रतिभासिक सुख के लोभ से जीव यमयातना की परवा नहीं करता । मूर्ख मनुष्य प्रातःकाल मल मूत्र के वेग से, मध्यान भुख–प्यास से तथा रात्रि में काम क्रिड़ा और निद्रा से बाधित होता है । अतः विवेकी मनुष्य को इन देह–गेह, पुत्र–कलस आदि के साथ सदा आसक्ति का त्याग करदेना चाहिये । यदि आसक्ति न हटे तो किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के साथ सम्बन्ध बनाना चाहिये । क्योंकि संत महापुरुष संसारासक्ति रूपी रोग के औषधि है ।

तब वे महापुरुष आपको उपदेश करेंगे की – संसार का प्रत्येक जीव समस्त दुःखों की कारण सहित निवृत्ति एवं पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का अभिलाषी है । किन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति तो मानव जीवन में तभी हो सकती है, जब वह अपने अन्तःकरण को त्रिदोषों से मुक्त कर सके ?

प्रत्येक जीव में मल, विक्षेप तथा आवरण यह तीन दोष स्वाभाविक रूप से बने रहते हैं । जब तक इन तीन दोषों की निवृत्ति नहीं होती है, यह जीव तब तक जन्म–मृत्यु रूप बन्धन से मुक्त नहीं हो पाता है । इन तीन दोषों की निवृत्ति हेतु वेद में कर्म, उपासना तथा ज्ञान साधन का प्रतिपादन किया गया है ।

जीव के मल दोष की निवृत्ति हेतु निष्काम कर्मयोग को बताने वाले ८०,००० मन्त्र हैं । विक्षेप दोष को दूर करने हेतु १६,००० मन्त्र

का प्रतिपादन किया गया है तथा जीव के आवरण दोष को दूर करने हेतु ४००० मन्त्रों का प्रतिपादन किया गया है ।

जब जीव के मल दोष की निवृत्ति निष्काम कर्म द्वारा हो जाती है तब वह विक्षेप दोष को दूर करने के लिये साकार या निराकार उपासना प्रारम्भ करता है तथा संत सेवा, सत्संग करता है । जिसके फल स्वरूप उसके मन में जब ब्रह्म जिज्ञासा या मुक्ति की जिज्ञासा जाग्रत हो जाती है, तब वह जीव किसी श्रोत्रिय–ब्रह्मनिष्ठ की शरण ग्रहण करता है एवं प्रार्थना करता है–'**असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतंगमय**' तब वे ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु जीव को कर्म, उपासना एवं उसके फल से वैराग्य दिलाकर ज्ञान में निष्ठा जाग्रत कराने हेतु विभिन्न शास्त्रों के प्रमाण द्वारा उसको आत्मज्ञान में श्रद्धा जाग्रत कराते हैं; क्योंकि बिना आत्मविचार के जीव का कल्याण केवल कर्म व उपासना द्वारा नहीं हो सकता ।

जब कोई मुमुक्षु शास्त्र अध्ययन करता है, तब वहाँ वह बारम्बार यह लिखा पाता है कि ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता है । दशरथ, हनुमान, अर्जुन, उद्धव, गोपियाँ, मीरा, नारद अनेकों संत महात्माओं ने ज्ञान प्राप्तकर ही मुक्ति प्राप्त की है । इस प्रकार शास्त्र स्वाध्याय करनेवाला साधक जब किसी गुरु की शरण में ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रार्थना करता है तो वे संत उसे यह कहकर पीछे हटा देते हैं कि ज्ञान साधना के तुम अधिकारी नहीं हो अभी कर्म, उपासना करो ।

जब कि शास्त्र कहता है ब्रह्म जिज्ञासा का उदय हो जाना ही साधक के ज्ञानाधिकार की योग्यता का प्रबल प्रमाण है । जब जीव के मल, विक्षेप दोष निष्काम कर्म, उपासना द्वारा निवृत्त हो जाते हैं, तभी उसके शुद्ध मन में ब्रह्म जिज्ञासा उदय होती है ।

यदि उन संतों से पूछा जाय कि मानव जीवन में ही आत्मज्ञान का अधिकार नहीं होगा तब किस जन्म में आकर कौन निर्णय करेगा कि

अब तुम ज्ञान पाने के पात्र बन गये हो ? भगवान श्रीराम कहते हैं–

यह तन कर फल विषयन भाई ।
स्वर्गउ स्वप्न अन्त दुःख दाई ।।
साधन धाम मोक्षकर द्वारा
पाइ न जेही परलोक संवारा
सोकृत निन्दक मंदमति आत्महन गति जाय ।

अब शास्त्र सिद्धान्त व भगवान की वाणी के विरूद्ध जीव को सत पथ से भटकाने वाले, ज्ञान मार्ग में अश्रद्धा करानेवाले दम्भी वेशधारी संत के भय से साधकों को मुक्ति दिलाने हेतु यह स्वतन्त्र ग्रन्थ **'कर्म से मोक्ष नहीं'** में अनेक शास्त्र प्रमाणों का संग्रह किया है, ताकि मुमुक्षु ज्ञान मार्ग को अपने कल्याण का साधन जान श्रद्धा एवं साहस से उसको ग्रहण कर अपना इसी जीवन में कल्याण कर आत्महत्यारे की कुगति से बचकर कैवल्य मोक्ष परमपद को प्राप्त कर सकें ।

जब रामकृष्ण देव की भक्ति साधना पूर्ण होगई तो तोतापुरी जी सद्गुरु ने उसे कहा कि अब तेरी भक्ति पूर्ण होगई, अब अपनी इस काली मां की उपासना को छोड़, मुझसे ज्ञान ले ले । यह तेरे व परमात्मा के बीच आखरी दीवार है । ऐसा ही गुरुवचन में श्रद्धा कर रामकृष्ण ने अपनी भेदभक्ति का त्यागकर परमात्मा के साथ सोऽहम् रूप अभेद चिन्तन कर कि वह ब्रह्म मैं हूँ द्वारा अपना कल्याण कर लिया । ज्ञान से हटाने व कर्म, उपासना में जोड़ने की बात तो सब कहते हैं किन्तु कर्म, उपासना सीढ़ी से उठाकर ज्ञान में चढ़ने की बात कोई तोतापुरी जैसा सद्गुरु ही कहने का साहस करता है ।

स्वामी निरंजन

विवेक की आँख

सत्संग और विवेक यही दोनों साधन मुमुक्षु के दो निर्मल नेत्र हैं । जिस व्यक्ति के जीवन में इन दो नेत्रों का अभाव है, वह पुरुष आँख होकर भी अन्धा है । जो मनुष्य अपने हित और अहित को नहीं जानते, सदा कुमार्ग पर चलनेवाले है और मात्र पशु की तरह आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन क्रिया में ही सारा जीवन व्यतीत कर रहे हैं, वे मनुष्य आत्म हत्यारे नरक गामी है । ज्ञान से शुन्य मनुष्य पशु के समान है '**ज्ञान हीनः पशुः स्मृतिः**' । मनुष्य अपने मन को प्रिय लगने वाले जगत के पदार्थों से बन्धन बनाता जाता है, वह उतने ही अधिक दुःख को पाता है । यदि मनुष्य स्वयं ही अपने कल्याण का साधन नहीं करता, तब दूसरा कौन हितैषी होगा जो आपको भव बन्धन से मुक्ति दिला सकेगा ?

कुछ अज्ञानी लोग अनेक प्रकार के कर्म कांड में ही उलझे रहते हैं । वे ब्रत, जप, तप, शरीर को सुखाने वाला कठोर उपवास करनेवाले कभी मुक्त नहीं हो सकेंगे । क्या बांबी को पीटने से उसमे छुपा हुआ सर्प मर सकेगा ? लम्बी जटाओं के भार को ढोने वाले ढोंगी नामधारी साधु क्या बिना ज्ञान के मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे ?

जो संसार के विषय भोग में आसक्त होकर 'मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ' ऐसा कहता है वह कर्म मार्ग तथा ज्ञान मार्ग दोनों से भ्रष्ट हो जाता है । संसार में, घर में और अरण्य में लज्जा त्यागकर समान रूप से नग्न होकर गर्दभ, पशु, कुत्ते, सुवर, गाय, बैल विचरण करते हैं तो क्या इस आचरण से मनुष्य मुक्त हो जाय तो फिर मिट्टी, और भस्म में शयन

करने वाले कुत्ते, गधे, हाथी भी मुक्त हो सकेंगे ? तब ज्ञान द्वारा मुक्ति के वैदिक सिद्धान्त गलत हो जावेगा । घास पत्ते और जल फल पत्र का आहार करने वाले निरन्तर जंगल में रहने वाले, श्रृगाल, मृग, भेड़िये, मुर्गा, कबुतर, तोता, बन्दर, भालु, मेंढक, चूहा, सर्प क्या तपस्वी योगी हो जाते हैं ? अन्न छोड़ पत्र फल खाने से अथवा ग्राम, घर वस्त्र छोड़ देने से कोई संन्यासी नहीं हो जाता । मण्डुक, मछली, कछुआ आदि जल में जन्म से मृत्यु तक रहने से गंगादि नदियों में रहने से क्या वे योगी तपस्वी कहे जा सकेंगे ?

चातक कभी भूमि पर स्थित जल नहीं पीता । कबूतर कंकड़, चकोर अग्नि, अजगर हवा खाने से तपस्वी नहीं हो जाते । मोक्ष का कारण तो साक्षात् तत्त्वज्ञान ही एक मात्र साधन है । वेद शास्त्र और पुराण को जानने वाला पण्डित भी आत्मज्ञान को नहीं जानता, वह तो पशु के समान या कौए के समान काँव काँव करने जैसा है ।

जैसे अमृतपान करलेने के बाद उसे दूध पान से या भोजन करने की जरूरत नहीं उसी प्रकार तत्त्ववेत्ता को शास्त्र चिन्तन से कोई प्रयोजन नहीं है । न वेद अध्ययन से मुक्ति प्राप्त होता है और न शास्त्रों के पाठ करने से ही होती है । मोक्ष की प्राप्ति तो ज्ञान से होती है । किसी दूसरे उपाय से नहीं । जिस प्रकार मुक्ति के लिये न तो आश्रम धर्म का अनुष्ठान कारण है, न षट् दर्शनों का अध्ययन कारण है उसी प्रकार कर्म भी करना नहीं है मात्र ज्ञान ही मोक्ष का कारण है ।

गुरु के द्वारा उच्चारित तत्त्वमसि महावाक्य धारण करने से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है । 'मोक्ष मूलम् गुरु कृपा' अन्य सब विद्याएँ विडम्बना मात्र है । वेद शास्त्रादि के अध्ययन रूपी परिचय एवं कर्मकाण्ड से रहित केवल गुरु मुख से प्राप्त अद्वैत ज्ञान ही कल्याणकारी कहागया है अन्य करोड़ो शास्त्रों को पढ़ने से क्या लाभ ? कुछ नहीं ।

द्वै पदे बन्ध मोक्षाय ममेति नममेतिच ।
ममेति बन्धते जन्तुर्न नममेति प्रमुच्यते ।।

गरुड़ पुराण १६/९३

'न मम' मेरा नहीं है और मम–मेरा है ये दो भावनाएँ ही बन्धन और मोक्ष के कारण है । देह, धन सम्पत्ति, घर, परिवार पुत्र कन्यादि में मम बुद्धि करनें से प्राणी बन्धन को प्राप्त होता है । और 'मेरा नहीं' इस प्रकार की भावना करने से जीव मुक्त हो जाता है ।

''तन्कर्म यन्न बन्धाय, सा विद्या या विमुक्ति दा ।''

कर्म वही जो बन्धन का हेतु न बने तथा विद्या वही है जो मुक्ति प्रदान करे । इसके अलावा सब कर्म बन्धन रूप है । जब तक गुरु की कृपा नहीं प्राप्त होती तब तक तत्त्वज्ञान की चर्चा ही कहाँ सुनने को मिलती है । इसलिये श्री गुरुमुख से आत्मतत्त्व विषयक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । ज्ञान हो जाने पर प्राणी संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है । जो व्यक्ति राग और द्वैष रूपी मलों का त्याग कराने वाले ज्ञान रूप जलाशय और सत्य स्वरूप मानस तीर्थ में स्नान करता है, वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

'तीर्थ में जाकर मृत्यु हो जाय'– इस उंत्कण्ठा से उत्सुक होकर जो अपने घरका परित्याग करके अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, अवन्तिका आदि पुरी में निवास करता है वह एकान्तवासी सद्गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सहज मुक्त हो जाता है किन्तु बिना ब्रह्म ज्ञान केवल तीर्थ में प्राण त्यागने मात्र से किसी कुत्ते, सूवर, गधे, घोड़े, मछली, कौए आदि किसी का मुक्ति नहीं हो सकेगी। यदि हो जावे तो फिर मनुष्य जीवन एवं ज्ञान प्राप्त करने को दुर्लभ क्यों कहाँ ? फिर इनका महत्व क्या ?

तत्त्वज्ञानी पुरुष मोक्ष प्राप्त करते है सकामी कर्मोनुष्ठान कर्ता स्वर्गको प्राप्त होते है । पापियों की दुर्गति होती है और पशु पक्षियों का

दुर्गति होती है और यह जीवों बारम्बार जन्म–मरण रूप संसार में भ्रमण करते हैं ।

परमात्माकी प्राप्ति हेतु ब्रह्मज्ञान ही है ।

''विद्यैव तु निर्धारणात्'' ब्रह्मसूत्र ३/३/४८

श्रुतियों द्वारा निश्चित रूप से कह दिया जाने के कारण ब्रह्म विद्या ही एक मात्र मुक्ति में कारण है, कर्म नहीं ।

व्याख्या–श्रुति में कहा कि '**तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**' अर्थात् उस परब्रह्म परमात्मा को जानकर ही मनुष्य जन्म मरण को लाँघ सकता है । परमपद, मोक्ष की प्राप्ति के लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है । ब्रह्मविद्या का उपदेश करते समय यमराज ने नचिकेता से भी यही कहाकि –

एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखंशाश्वतं नेतरेषां ।।

जो सब प्राणियों का अन्तर्यामि, एक, अद्वितीय तथा सबको अपने वश में करने वाला है, जो अपने एक ही रूप को बहुत प्रकार से बना लेता है उस अपने ही हृदय स्थित परमेश्वर को जो ज्ञानी देखते हैं, उन्हीं को सदा रहने वाला आनन्द प्राप्त होता है दूसरों को अर्थात् भेद भावनायुक्त कर्म उपासना करने वालाों को नहीं ।

ब्रह्मविद्या कर्मों का अङ्ग नहीं – अध्याय, पाद, सूत्र

अतएव चाग्नीना द्यनपेक्षा – ३/४/२५

इस ब्रह्म विद्या रूप यज्ञ में अग्नि, समिधा, घृत आदि पदार्थों की आवश्यकता नहीं है ।

यह ब्रह्मविद्या रूप यज्ञ जीव को ब्रह्मानन्द प्राप्ति अथवा मुक्ति प्राप्त करादेने में समर्थ है। आचार्य द्वारा यह विद्या श्रवण, मनन,

निदिध्यासन द्वारा पूर्ण होते ही जीव को स्वयं परमात्मा का साक्षात्कार करा देते है । इसलिये इस ज्ञान यज्ञ में अग्नि, समिधा, घृत आदि भिन्न भिन्न पदार्थों का विधान न करके केवल परब्रह्मं परमात्मा के स्वरूप का ही प्रतिपादन किया गया है । भगवान श्रीकृष्ण भी अर्जुन को गीता उपदेश करते समय यही ब्रह्मज्ञान यज्ञ का ही समर्थन करते हुए बता रहे है कि –

ब्रह्मार्पण ब्रह्म हवि ब्रहाग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना ।। ४/२४ गीता

उस ब्रह्म चिन्तन रूप यज्ञ में भिन्न भिन्न उपकरण और समाग्री की आवश्यकता नहीं होती है । किन्तु उसमें तो स्त्रुवा भी ब्रह्म है, हवि भी ब्रह्म है और ब्रह्म रूप अग्नि में ब्रह्म रूप होता द्वारा ब्रह्म रूप हवन क्रिया का जाती है । उस ब्रह्म चिन्तन रूप कर्म में समाहित हुए साधक द्वारा जो प्राप्त क्रिया जानेवाला फल है, वह भी ब्रह्म ही है । इसका कारण यही है कि उसकी बुद्धि में भेद भाव नहीं रहता है वह सब को अविनाशी आत्मस्वरूप ही समझता है । यह सब कुछ ब्रह्म ही है इस प्रकार निष्ठा रखने वाले ज्ञानी के द्वारा यज्ञ कर्म का अर्थ ब्रह्म ही है उसका कर्म करना भी निष्कर्म होने के समान ही होते है । इस प्रकार यह ब्रह्म विद्या जीव के उस परम पुरुषार्थ की सिद्धि में सर्वथा स्वतन्त्र समर्थ होने के कारण कर्म की अङ्ग भूत नहीं हो सकती । भगवान अर्जुन को द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ की श्रेष्ठता बतलाते हुए कहते हैं ।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञान्यज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्मोखिलंपार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।। –४/३३ गीता

द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते है जैसे समस्त नदियाँ सागर में जाकर पूर्ण हो जाती है । वेद जिनका मूल है और बाह्य क्रिया प्रधान स्थूल–यज्ञ हैं, उनका अपूर्व फल अनित्य स्वर्ग सुख मात्र ही है । उन

यज्ञों में एक मात्र जड़–द्रव्यों की ही आहूती दी जाती है । जैसे सूर्य के प्रकाश सम्मुख समस्त तारागण निस्तेज निष्प्रभ हो जाते हैं ठीक वैसे ही इस ज्ञान यज्ञ के समक्ष ये सब जड़–यज्ञ निष्प्रभ हो जाते हैं । इस ज्ञान यज्ञ की महिमा बताते हुए कहते हैं –

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं सवांदमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तनाहमिष्टः स्यामितिमे मतिः ।। –१८/७०

जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवाद रूप गीता शास्त्र को पढ़ेगा पढावेगा उसके द्वारा भी मैं इस ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊँगा – अन्य जल फल, पुष्प, दीप, धूप, आरती की जरूरत नहीं है, ऐसा मेरा मत है ।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्व क्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।। –१३/२ गीता

तू सब क्षेत्रों में अर्थात् सब जीवों के शरीर में जो क्षेत्रज्ञ अर्थात् जो जीवात्मा जानने वाला है वह भी मुझे ही जान और इस प्रकार क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ, जड़–चेतन, दृश्य–द्रष्टा, अनात्मा–आत्मा, पर प्रकाश–स्वयं प्रकाश, रथ–रथी, प्रकृति पुरुष, शव–शिव का जो तत्त्व से जानना है वह ज्ञान यज्ञ है, ऐसा मेरा मत है ।

हाँ । ब्रह्म विद्या प्राप्त करने के अधिकारी बनने के लिये प्रथम जीव को अपने वर्णाश्रम कर्मों को निष्काम भाव से करने की आवश्यकता है फिर ब्रह्म जिज्ञासा '**अथातो ब्रह्म जिज्ञासा**' १/१/१ ब्रह्म सूत्र हो जाने पर किसी श्रोत्रिय ब्रह्म निष्ठ गुरु की शरण में जाकर निवेदन करे कि **असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योंमाऽमृतगमय ।**

लोककल्याणर्थ दृढ़ज्ञानी का कर्तव्य

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्म तृप्तश्च मानवः
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्यकार्य न विद्यते । –३/१७

जो मनुष्य आत्म भाव में ही रमण करने वाला और आत्मा में ही तृप्त तथा आत्मा में ही सन्तुष्ट हो उस आत्मनिष्ठ ज्ञानी महापुरुष के लिये किसी प्रकार कोई कर्तव्य नहीं है ।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।। –६/२२

जिस ज्ञानी को परमात्मा की सोऽहम् रूप से प्राप्ति हो चुकी है और वह परमात्मा से अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है तथा जो साक्षी भाव में स्थित बड़े भारी दुःख से विचलित नहीं होता है एवं ब्रह्मलोकादि सुख के प्रति भी आकर्षित नहीं होता है उस ज्ञानी के लिये कोई कर्तव्य नहीं है ।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ।। – ३/१८

उस महापुरुष का इस संसार में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और कर्मों के न करने से ही उसकी कोई हानि भी नहीं है । तथा उसका सम्पूर्ण प्राणियों से भी किञ्चित मात्र भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता है ।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।। –३/१९

इसलिये ज्ञानी महापुरुष निरन्तर आसक्ति रहित होकर सदा लोक कल्याणार्थ कर्म करते हुए परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं । क्योंकि निष्काम कर्म परमात्मा की प्राप्ति अर्थात् मुक्ति में बाधक नहीं होते हैं ।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ।। –३/२०

राजा जनक, वामदेव, विश्वामित्र, वशिष्ठादि ज्ञानी जन भी आसक्ति रहित कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे । इसीलिये लोक कल्याण को देखते हुए भी तुझे कर्म करते रहना चाहिये ।

न मे पार्थास्थि कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन् ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।।–३/२२

हे अर्जुन ! मुझे इन तीन लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्म में बरतता हूँ ।

यदि ह्वहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
ममवर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।। –३/२३

क्योंक्ि हे पार्थ ! यदि कदाचित् मैं सावधान होकर कर्मों में न बरतूँ तो बड़ी हानि हो जावे, क्योंकि श्रेष्ठ महापुरुष जो आचरण करता है समस्त मनुष्य समुदाय उसी आचरण को प्रमाण मानकर उसी अनुसार बरतने लग जातें है ।

उत्सीदेयुरिमें लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजा ।। –३/२४

इसलिये यदि मैं कर्म न करुँ तो ये सब मनुष्य नष्ट भ्रष्ट हो जायँ और मैं संकरता का करने वाला होकर इस समस्न प्रजा को नष्ट करने वाला बनुँ ।

न बुद्धि भेदं जनयेदज्ञानां कर्म सङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन ।। –३/२६

परमात्मा के स्वरूप में अटल स्थित हुए ज्ञानी पुरुष को चाहिये कि वह शास्त्र विहित कर्मों में, आसक्तिवाले अज्ञानियों की बुद्धि में उनके अन्तःकरण शुद्धि से पूर्व ब्रह्म जिज्ञासा उदय होने के पूर्व, निष्काम कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे । किन्तु लोक कल्याणार्थ स्वयं शास्त्र विहित कर्म करता हुआ उनसे भी करावे ।

जिस ज्ञानी के मन में लोक संग्रह करने की प्रवृत्ति नहीं होती है वे कर्म करने में रूचि नहीं रखते हैं । क्योंकि वे संसार को स्वप्नवत् मिथ्या जान उदासीन वृत्ति से जीवन व्यतीत करते हैं जैसे शुकदेव, वामदेव, जड़ भरतादि ।

परन्तु जिस ज्ञानी के मन में लोक कल्याण की भावना है, वे जनक, राम, कृष्ण, शंकराचार्य आदि अन्तिम क्षण तक कर्म करते रहे । क्योंकि प्रवृत्ति प्रधान जिनका प्रारब्ध होता है वे कर्म में प्रवृत्त प्रधान जिनका प्रारब्ध है वे शुक, भरत जैसे सदा संसार की प्रवृत्ति से डर उदासीन जड़वत् दिखाई पड़ते है ।

ज्ञानी महापुरुष शास्त्र लिखना, प्रवचन करना, धर्मशाला, गौशाला, औषद्धालय, वृद्धाश्रम, विकलांग सेवा, अनाथाश्रम, वालाश्रम, अन्धाश्रम निःशुल्क विद्यालय, वृक्षारोपण, रक्तदान, नेत्रदान, सर्वांग दानादि लोक संग्रहार्थ किये जाने वाले कर्म कहलाते हैं । अतः ज्ञानी अज्ञानी का वर्तमान जीवन पूर्व संचित कर्मों से प्रवृत्ति प्रधान या निवृत्ति प्रधान निश्चित होकर ही उनका वर्तमान शरीर तैयार होता है ।

– विशेष –

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्तिभूतानि निग्रहः किंकरिष्यति ।। –३/३३

हे अर्जुन ! सभी प्राणी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने प्रारब्ध कर्मानुसार प्राप्त स्वाभाव वश परवश हुए कर्म करते हैं । ज्ञानवान भी अपनी प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है । फिर इसमें किसी का हठ क्या करेगा ? कि मैं ऐसा नहीं करूँगा जैसे अर्जुन का गीता उपदेश के पूर्व आग्रह था । अर्थात् सभी जीव प्रकृति अनुसार करने को मजबूर हैं ।

कृष्ण भगवान को पाण्डव कौरव युद्ध क्यों कराना पड़ता ? कृष्ण की बात ध्रतराष्ट्र मानने से क्यों इन्कार कर गये ? स्वयं राम एक पत्नीधारी का आचरण भगवान श्रीकृष्ण स्वयं आचरण रूप में नहीं अपना रहे हैं, फिर साधारण लोगों की तो बात ही क्या करें ?

अन्यथा इतने तीर्थांकर, अवतार, सिद्ध महापुरुष का संसार तो कोई दूसरी तरह का ही होना चाहिये था । जो अवतार महापुरुष प्रथम हुए व जो उन्होंने आचरण प्रमाण रूप से स्थापित किया उसका उनके बाद आने वाले लोग आचरण करते रहते तो यह जगत् की वर्तमान दुर्दशा क्यों होती ? अतः जिसके मन में संसारियों के प्रति करुणा बुद्धि हो वह लोक संग्रह हेतु कर्म में अनासक्त होकर कर्म करता रहे अन्यथा शुक, भरत की तरह अपने स्वरूप में स्थित रह जीवन्मुक्त हो विचरण करे ।

लोक संग्रह एक कल्पना

श्री वशिष्ठजी कहते हैं –

हे राम ! जगत तीन काल में हुआ ही नहीं । जैसे तीनों कालों में रस्सी में साँप नहीं इसी प्रकार आत्मा में जगत् तीन काल में नहीं । बार बार यही सिद्धान्त सभी वेद उपनिषद इतिहास, महाभारत, रामायण में दोहराया गया है जैसे –

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना,
सत हरि भजन जगत सब सपना । – रामायण

ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या
जीवो ब्रह्मैव केवलम्

एकमेवाऽद्वितीयंब्रह्म, नेह नानास्ति किंञ्चन
मृत्यो स मृत्युमऽवाप्नोति यह इव नानेव पश्यति

एक अखण्ड सीतावर

अहंमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशय स्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूताना मन्त एव च ।। –गीता१०/२८

मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं हूँ । मेरे अलावा यहाँ अन्य कुछ भी नहीं है । जीव जगत मुझ आत्म सागर की लहर मात्र है । जैसे लहर जलसे कुछ भिन्न नहीं इस प्रकर जीव मुझसे भिन्न नहीं है ।

अब जगत ही नहीं जीव ही नहीं तो धर्म भी नहीं पुण्य–पाप भी नहीं स्गर्व–नरक भी नहीं तब लोक संग्रह भी कल्पना मात्र है केवल ब्रह्म ही सत्य है ।

लोक संग्रह

आचार से भी यह सिद्ध नहीं होता है कि विद्या कर्म का अङ्ग है, क्योंकि श्रृति में दोनों प्रकार का आचार देखा जाता है । एक ओर ज्ञाननिष्ठ जनकादि गृहस्थ महापुरुष लोक संग्रहार्थ यज्ञ–यगादि कर्म करते देखे जाते है तो दूसरी ओर केवल भिक्षा से निर्वाह करने वाले विरक्त त्यागी शुकदेव, वामदेव,भरत आदि ज्ञान निष्ठ हो केवल ब्रह्म चिन्तन में ही रत रहते हैं । इस प्रकार दोनों प्रकार के आचार लोक कल्याणार्थ उपलब्ध होते हैं । जिनको ज्ञान प्राप्त हो गया है उनको न कर्म करने से प्रयोजन है और न उनके त्याग करने से ही प्रयोजन है । अतएव प्रारब्धानुसार ईश्वर के विधानानुसार उनका आचरण दोनों प्रकार का ही देखा जाता है ।

तथापि परमात्मा की प्राप्ति रूप पुरुषार्थ का कारण तो एक मात्र परमात्मा का तत्त्वज्ञान ही है ।

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान ब्राहणो निर्वेदमायान्नास्त्य कृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।

इस प्रकार कर्म से प्राप्त होने वाले लोकों की परीक्षा करके अर्थात् इष्ट और पूर्त कर्मों के फल रूप स्वर्ग लोक में जाकर भोगों का अनुभव करके पुण्य समाप्ति पर पुनः मनुष्य लोक में या इससे भी अत्यन्त नीचे के लोक में गिरते हैं । अर्थात् उन कर्म फलों से मिलने वाले लोक एवं भोग की अनित्यता को जानकर मुमुक्षु को उन अनित्य जड़ कर्मों से विरक्त हो जाना चाहिये । तथा यह निश्चय करना चाहिये कि वह सबका अपना निर्गुण निराकार स्वतः सिद्ध अकृत परमात्मा अनित्य कर्मों के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता । अतः जिज्ञासु साधक उस ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये वेदज्ञ ब्रह्मनिष्ठ गुरु के समीप हाथ में समीधा लेकर जाये । इस तरह गुरु अपनी शरण में आये हुए शिष्य को ब्रह्मविद्या का उपदेश करें । मुण्डक उपनिषद । –१/२/१३

वृत्ति ज्ञान का साधन

अपरोक्षानुभूति शंकराचार्य

कार्ये कारणतायाता कारणे न हि कार्यता ।
कारणत्वं ततो गच्छेत्कार्याभावे विचारतः ।। –१३५

अलंकार कार्य में स्वर्ण कारण अनुगत होता है । कारण स्वर्ण में कार्य अलंकार अनुगत नहीं होता है । अतः विचार करने से, कार्य का अभाव होने से कारण स्वर्ण की कारणता भी नहीं रहती । इसी तरह मिट्टी और घड़े के, लोह व मशीनों के, सूत व कपड़े के, लकड़ी व फर्नीचर के द्रष्टान्त द्वारा अपने अद्वैत सत्ता का, शुद्धात्मा का ही बारम्बार दृढ़ निश्चय करे ।

कारणं व्यतिरेकेण पुमानादौ विलोकयेत् ।
अन्वयेन पुनस्तद्धि कार्ये नित्यं प्रपश्यति ।। – १३८

मुमुक्षु को चाहिये कि वह सर्व प्रथम विवेक द्वारा कारण को कार्य भ्रान्ति से अलग करे । जैसे चूड़ी में कड़ा नहीं, कड़े में अंगुठी नहीं

अगुंठी में कानबाली नहीं, कानवाली में नाक का कांटा नहीं, इनका परस्पर व्यतिरेक है, किन्तु स्वर्ण सब में अनुगत है । स्वर्ण के बिना कोई अलंकार नहीं है । अतः स्वर्ण ही एक मात्र सत्य है, अलंकार कल्पना मात्र स्वर्ण में आरोपित हुए है ।

इसी प्रकार स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण में आत्मा की अन्वयता है किन्तु स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर नहीं, सूक्ष्म शरीर कारण शरीर नहीं एवं कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल शरीर मुझ आत्मा में नहीं है । इन शरीरों की परस्पर व्यतिरेकता है एवं आत्मा में भी यह तीनों नहीं है, इसलिये यह तीनों असत है । आत्मा में यह तीनों शरीर नहीं है, किन्तु आत्मा तीनों शरीर में व्याप्त है ।

कार्ये हि कारणं पश्येत् पश्चात्कार्यं विसर्जयेता
कारणत्वं ततो नश्येदवशिष्टं भवेन्मुनिः ।। –१३९

मुमुक्षु पहले अलंकार कार्य में स्वर्ण को देखे और फिर अलंकार कार्य का भी मन से त्याग हो जावे । इस प्रकार स्वर्ण पर आरोपित कारणताका नाश हो जाता है । फिर जो कार्य–कारण से रहित अवशिष्ट चेतन ही शेष रह जाता है ।

भावितं तीव्रवेगेन वस्तु यन्निश्चयात्मना ।
पुमांस्तद्धि भवेच्छीध्रं ज्ञेयं भ्रमरकीटवत् ।। –१४०

जिस वस्तु का तीव्र वेग से चिन्तन किया जाता है, जीव तुरन्त वही हो जाता है । जैसे जड़ भरत हरिन चिन्तन द्वारा हरिन हो गये, राजा पुरन्जन स्त्री चिन्तन से स्त्री हो गये । रामकृष्ण स्त्री चिन्तन से उनके स्त्री की तरह स्तन बड़े हो गये, मासिकधर्म स्राव होने लग गया, कीड़ा भृंगी बन जाता है । इसी तरह निरन्तर आत्म चिन्तन करने वाला जीव शीघ्र ही आत्मा हो जाता है ।

अदृश्यं भाव रूपं च सर्वमेतच्चिदात्मकम् ।
सावधानतया नित्यं स्वात्मानं भावयेद्बुधः ।। –१४१

यह सम्पूर्ण जगत अदृश्य भव रूप चेतनमय है, इस प्रकार बुद्धिमान पुरुष सावधान होकर अपने अखण्ड आत्म स्वरूप का चिन्तन करे । जगत् को असत्य जान उसके प्रति सत्यत्व बुद्धि का त्याग करदे ।

ब्राह्मी वृत्ति का महत्व

ये ही वृत्तिं जहत्येनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम्
वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः ।।–१३०

जो लोग 'मैं ब्रह्म हूँ' इस पवित्र ब्रह्म वृत्ति का त्याग कर दासोऽहम् वृत्ति को धारण करते हैं, वे वृथा ही जीते है तथा वे देवताओं के पशु के समान है । –१/४/१० ब्रह्मद.उप.

ये हि वृत्तिं विजानन्ति ये ज्ञात्वा वर्धयन्त्यपि ।

ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये ।।–१३१

जो इस ब्रह्माकार वृत्ति में निष्ठा रखते है और निरन्तर इसी वृत्ति में जीवन व्यतीत करते हैं वे ही सच्चे महापुरुष हैं तथा वे ही त्रिलोकी में वन्दनीय और धन्य है ।

जो ब्रह्मवार्ता में कुशल हैं किन्तु ब्राह्मी वृत्ति से रहित और राग द्वैष युक्त जीवन व्यतीत कर रहे है वे अत्यन्त अज्ञानी बारम्बार जन्मते–मरते रहते हैं ।

ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थितिः ।
ध्यानशब्देन विख्याता परमानन्ददायिनी ।।–१२३

'मैं ब्रह्म हूँ' इस वृत्ति से जो परमानन्द प्रदायिनी निरालम्ब स्थिति होती है, वही ध्यान नाम से प्रसिद्ध है ।

यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात् ।
तद्वत्सत्यमविज्ञाय जगत्पश्यति मूढधीः ।। –९५

जिस प्रकार मनुष्य अज्ञानवश रस्सी को सर्प रूप देखता है, उसी प्रकार सत्यात्मा को न जानने के कारण ही मूढ़ बुद्धि संसार को देखता है । जैसे रस्सी में सर्प असत्य प्रतीत होता है, इसी प्रकार आत्मा में जगत असत भासता है ।

रज्जुरूपे परिज्ञाते सर्पभ्रान्तिर्न तिष्ठाति ।
अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चः शून्यतां व्रजेत् ।। –९६

जैसे रस्सी का सर्प भ्रम ज्ञान द्वारा दूर हो जाने पर सर्प भ्रम नहीं रहता, उसी प्रकार अधिष्ठान ब्रह्म को जान लेने पर अध्यस्त जगत् शून्य रूप हो जाता है ।

कार्य कारणता नित्यमास्ते घट मृदोर्यथा ।
तथैव श्रुतियुक्तिभ्यां प्रपञ्चब्रह्मणोरिह ।।–६६

जिस प्रकार घट और मिट्टी की कार्य–कारणता नित्य है उसी प्रकार श्रुति और युक्ति से प्रपञ्च और ब्रह्म का भी नित्यता है । अर्थात् जैसे घटादि में कारण रूप मिट्टी सदा विद्यमान है, घट नाम–रूप तो व्यवहारार्थ कल्पना मात्र है मिट्टी ही सत्य है । वैसे ही ब्रह्म नित्य एवं अखण्ड होने से सर्व रूप है ब्रह्म भी घड़े में मिट्टी की तरह नाम रूप जगत में नित्य विद्यमान है ।

गुरु शिष्य लक्षण

ईश्वर से अधिक गुरु मोरे भक्ति सुजान ।
बिन गुरु भक्ति ज्ञानी हूँ लहै न आतम ज्ञान ।। –७
वेदउदधि बिन गुरु लखै, लागै लौग समान ।
बादल गुरु मुख द्वारा ह्वै,अमृत सेअधिकान ।।

जो भी भेदभादी गुरु से वेद पढ़कर द्वैत का प्रतिपादन करता है वह जगद्गुरु तो क्या साधारण गुरु भी नहीं मानना चाहिये । जो जीव ब्रह्म के एकत्व का उपेदश करता है, वही सद्गुरु होता है ।

अज्ञानी गुरु घट या मसक (चर्म बना) की तरह वह समुद्रके जल के खारे पन को दूर नहीं कर सकेगा केवल ज्ञानी गुरु ही बादल के समान है, जो द्वैत भाव रूपी खराश को छोड़ अभेद अमृत का ही पान कराता है ।

आचार्य से वेद पढ़ने का यह अर्थ नहीं की जो वेद की श्रुति स्मृति है उन्हें पढ़ने से जीव ब्रह्म एकत्व ज्ञान होगा संस्कृत ग्रन्थ से ही होगा और भाषाग्रन्थ से ज्ञान नहीं होगा, ऐसा नहीं समझे ।

ब्रह्मवेता पुरुष ब्रह्मरूप है, उसकी जो भी भाषा है वह वेद वाणी ही है । वह भाषा रूप होवे या संस्कृत रूप होवे वह तो जीव ब्रह्म के भेद भ्रम को काट ही देती है । आयुर्वेद के ग्रन्थ मूल संस्कृत भाषा में है किन्तु अनेक भाषा में उनका अनुवाद होने से समान रोग निवृत्ति कर देता है ।

वाणी जाकी वेद सम कीजे ताकी सेव ।
ह्वै प्रसन्न जब सेव तैं, तब जाने अपना स्वरूप ।। –११

गुरु साक्षात् परमब्रह्म गुरु की सेवा ईश्वर से भी अधिक है । भाषाग्रन्थ से ज्ञान नहीं होगा यह मानना गलत है । इसी अभिप्राय से एकनाथ, दादु, कबीर, नानक, ज्ञानदेव, रामदास आदि महापुरुषों ने प्राकृत वाणी से ग्रन्थ बताये हैं, जो संस्कृत ग्रन्थ समान ही कल्याणकारी हैं ।

है जब ही गुरु संग, करे दण्डजिमि दण्डवत ।
धारे उत्तम अंग, पावन पाद सरोज रज ।। –१२

चरण धूली को पावन जान मस्तक पर लगावे ।

गुरु समीप पुनि करिये वासा, जो अति उत्कट है जिज्ञासा
तन मन धन बच अर्पि देजे जो चाहे हिय बन्धन छिजे ।।१३

तन करि बहु सेवा विस्तारे आज्ञा गुरु की कवहुँ न टारे ।
मन में प्रेम राम सम राखे है प्रसन्न गुरु इस अभिलाखै ।।१४

यस्य देवे पराभक्ति यथा देवे तथा गुरु

साष्टांग – दो पाद, जो जानु, दो हाथ, हृदय और मस्तक यह आठ अंग सहित भूमि पर दण्ड की तरह दीर्घ नमस्क ार करने को कहते हैं ।

दोष दृष्टि स्वपने नहीं आने, हरि हर ब्रह्म गंग रवि जाने ।
गुरु मूर्ति को हिय मैं, ध्याना, धारे चाहै कल्याना ।१५।

समर्पण

पत्नी पुत्र, भूमि, पशु, दासी दास द्रव्यगृह ब्रीहि विनासी ।
धन पद इन सवहिन कुभारवै है गुरु सरन दूरि तिदि नारवै ।१६।

गुरु त्यागी है तो वह इन सामग्री को स्वयं तो स्वीकार करता नहीं किन्तु गुरु प्राप्ति हेतु इन सबका त्याग कर त्यागी गुरु के पास जाना भी यह गुरु को ही अर्पण करने के समान है । ज्ञानश्रुतने लड़की धन राज्य अर्पण किया जनक अष्टावक्र को सर्वस्व दान किया प्रमाण है ।

● ब्रह्माचारी हेतु यह नियम हे कि वह गृहस्थ गुरु को सर्व अर्पण कर देना चाहिये और गुरु के पास जिज्ञास वहुल काल रहकर सभी प्रकार की सेवा करते हुए उनसे वेदान्त पढ़े एवं भिक्षा कर जीवन निर्वाह पाण प्राण धारण करे ।

गुरु जब शिष्य के ऊपर वात्सल्य भाव दर्शावे तब उन्हे हरि रूप अर्थात विष्णु रूप जाने ।

गुरु जब क्रोध करे तब उन्हें शंकर रूप जाने ।

गुरु जब राजसी व्यवहार रूप होवे तब उन्हे ब्रह्मा रूप जाने ।

गुरु जब शांत रूप में स्थित दिखाई देता उन्हें गंगा देवी रूप पवित्र जाने ।

गुरु जब वचन रूप किरणों द्वारा भेद सन्देह सहित अज्ञान अंधकार का नाश करे तब रबि रूप सूर्य रूप जाने ।

इस रीति से ब्रह्मवेत्ता गुरु के लिये शिष्य सर्वदा ईश्वर भाव रखे । सद्गुरु के प्रति स्वप्न में भी दोष दृष्टि न लावे ।

शिष्य को भिक्षा कर जो प्राप्त हो उसे गुरु के सम्मुख रख देना चाहिये । अपने हाथ से उसमें से कुछ नहीं लेना चाहिये । आचार्य यदि कुछ न दे तो दूसरी बार भिक्षा मांगकर न खावे । जब गुरु दे तभी खावे । मन में क्रोध ग्लानी अश्रद्धा कर गुरु शरण त्याग अन्यत्र न जाने । बल्कि गुरु को प्रसन्न देखकर अपने क्लयाणार्थ प्रार्थना करे कि मैं आपसे कुछ निवेदन प्रार्थना करना चाहाता हूँ । जब गुरु आज्ञा दे तब अपने मन के सन्देह को उनके सम्मुख छल, कपट, दम्भ, अहंकार छोड़ अपने कल्याणार्थ ही बात पुछे अन्य मन, शास्त्र, संत उपदेश सिद्धान्त के अनर्गल प्रश्न न के ।

हे भगबन ! मैं आपकी शरण में आया हूँ आप मुझ दुःखों की आत्मान्तिक निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति रूप मोक्ष का उपाय बताइये । मैं कर्म व उपासना के अनेक अनुष्ठान कर चुका हूँ किन्तु मेरे मन को शान्ति नहीं मिली ।

हे शिष्य ! मेरे मन में दुःख निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति सम्बन्ध में जिज्ञासा जो इच्छा हुई है यह अपने स्वरूप के न जानने के कारण ही हुई । तू स्वयं परमात्म स्वरूप परमानन्द मुक्ति ही है । जो पदार्थ अप्राप्त होता है उसकी प्राप्ति के लिये ही साधन कर्तव्य रूप है ।

अपना स्वरूप नित्य ही प्राप्त है । उसकी प्राप्ति की इच्छा भ्रान्ति से ही उत्पन्न हुई है । जन्म–मरण–दुःख रूप संसार मुझ में लेश मात्र भी नहीं है इसलिये अनहुए दुःख, बन्धन की निवृत्ति की इच्छा भ्रान्ति से ही है ।

हे शिष्य ! जन्म–मृत्यु से रहित सच्चिदानन्द ब्रह्म है वह तू है । इसलिये अपने मन में जन्म–मृत्यु का भय एवं दुःख मत माना ।

शिष्य पूछता है कि हे गुरुदेव ! यदि में आनन्द स्वरूप हूँ तो फिर विषयों की प्राप्ति से आनन्द क्यो होता है ?

हे शिष्य ! विष्यय प्राप्ति से बुद्धि वृत्ति अन्तर्मुख होती है तो तब आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ने से आत्मा का आभास रूप आनन्द का क्षणिक अनुभब होता है । यदि विषय में आनन्द होता तो गहरी नींद में किसी को आनन्दानुभूति नहीं होनी चाहिये । किन्तु सभी नींद से उठकर यही कहते हैं कि मैं रात सुख से सोया मुझे कुछ भी पता न लगा । यदि विषय में आनन्द होता तो एक विषय या व्यक्ति के प्रथम सम्पर्क के समय जो आनन्द आत्मा है वह दूसरे बार ग्रहण करने पर वह आनन्द नहीं मिलता है । विषय में आनन्द होता तो समाधि काल में किसी योगी को आनन्द नहीं मिलना चाहिये किन्तु वहाँ उसे ब्रह्मानन्द के परम सुख की अनुभूति होती है ।

अज्ञानी विषयों का आनन्द जानता है इसलिये विषय अभाव में दुःखी एवं प्राप्ति में सुख मानता । किन्तु ज्ञानी विषयानन्द के अनुभव काल में भी यह जानता रहता है कि यह विषय के माध्यम से जो आनन्द की अनुभूति हो रही है वह विषय पदार्थ की नहीं है बल्कि मुझ आनन्दधन आत्मा का विष्यय प्राप्ति से बुद्धि वृत्ति स्थिर हो जाने से मुझे आनन्द स्वरूप आत्मा का प्रतिबिम्बित आनन्द है । यह आनन्द मेरे आनन्द स्वरूप आत्मा से भिन्न पदार्थगत आनन्द नहीं है ।

हे प्रभो ! यदि दुःख व जन्म–मरण मुझ में नहीं तो यह किस कारण मुझ मे प्रतीत होते हैं ?

हे शिष्य ! जन्म–मरण रूप दुःख तुझ में नहीं है किन्तु आत्मा का ब्रह्म रूप से अज्ञान होने की कारण मिथ्या प्रतीत होवे है । जैसे रस्सी अज्ञान से सर्प की प्रतीती होती है एवं रस्सी ज्ञान से मिथ्या सर्प निवृत्त हो जाता है । इसी प्रकार आत्म अज्ञान से जगत एवं दुःख भासित होता है किन्तु आत्मज्ञान से जगत जीव एवं जन्म–मरण दुःख समाप्त हो जाता है ।

रस्सी में सर्प का भ्रम ज्ञान अविद्या का परिणाम और चेतन का विवर्त है ।

उपादान कारण के समान स्वभाववाला अन्यका स्वरूप परिणाम कहा जाता है जैसे रस्सी समान सर्प की प्रतीति तथा–

अधिष्ठान के विपरीत स्वभाव वाला अन्यका स्वरूप विवर्त कहलाता है जैसे स्वर्ण अलंकार ।

दहीं पुनः दुध नहीं हो पाता क्योंकि वह दुध का विकार हो चुका है किन्तु अलंकार अन्य नाम रूप को धारण करने पर भी स्वरूप से पृथक नहीं हुए है ।

इसी प्रकार यह नाम रूप संसार माया का परिणाम एवं चेतना का विवर्त है ।

हे शिष्य ! तेरे ब्रह्म स्वरूप के अज्ञान के कारण मिथ्या जगत की प्रतीति होती है । इसलिये मिथ्या जगत का आधार अधिष्ठान तू है इसलिये इस जगत भ्रम का द्रष्टा मुझ आत्मा से भिन्न नहीं है । जब सद्‌गुरु कृपा से निज सच्चिदानन्द अखण्ड अद्वय आत्मा का मैं रूप से बोध हो जाता है तब जीव ब्रह्म को जान कर ब्रह्म रूप ही हो जाता है । जो वस्तु जिसके अज्ञान से प्रकट होती है ये प्रतीत होती है वह प्रतीति उसकी ज्ञान से नष्ट होती है ।

भ्रान्ति जन्मय पदार्थ की निवृत्ति हेतु किसी प्रकार के साधन करने की जरूरत नहीं रहता है केवल भ्रान्ति के अधिष्ठान वस्तु का ज्ञान करना मात्र ही कर्तव्य रहता है ।

सर्प मिथ्या पदार्थ से अधिष्ठान रस्सी की कुछ हानि नहीं । इसी प्रकार मिथ्या जगत के द्वारा अधिष्ठान तुझ आत्मा की किसी प्रकार की हानि नहीं होती है । जैसे मरूस्थल में प्रतीत होने वाले जल द्वारा पृथ्वी को गीला नहीं कर पाता है । इसी प्रकार मिथ्या जगत प्रतीत होने पर भी हे शिष्य ! तेरे किसी प्रकार की कोई हानि नहीं है ।

''मैं सत् चित् आनन्द रूप ब्रह्म स्वरूप हूँ'' ऐसा निश्चय हो जाने को ही ज्ञान कहते है । यही मोक्ष का साधन है । इसके अतिरिक्त मुक्ति पाने का कोई अन्य स्वतन्त्र मार्ग नहीं है ।

''नान्यः पन्था विद्य तेऽयनाय''

जगत भ्रम का उपादान कारण अज्ञान है उस अज्ञान के नाश से जगत् भ्रम स्वतः नष्ट हो जाता है । आत्म अज्ञान से जगत भासता है, आत्मा ज्ञान से जगत भ्रम नष्ट हो जाता है । उस अज्ञान का नाश ज्ञान द्वारा ही होता है । कर्म उपासाना द्वारा कभी भी भेद भ्रम दूर नहीं हो सकता क्योंकि कर्म उपासना द्वैत भाव से ही होती है । अज्ञान का विराधी ज्ञान है कर्म उपासना नहीं । अज्ञान के उत्पन्न कर्म उपासना अपने कारण का नाश नहीं कर सकते ।

जैसे घर का अंधकार प्रकाश से ही दूर हो सकता है अन्य सहस्त्रो साधनों से अन्धकार दूर नहीं हो सकता । या दिन में ही सूर्य दर्शन हो सकता है किन्तु रात्रिमें किसी साधन से सूर्य दर्शन नहीं हो सकता । इसी प्रकार बिना ज्ञान के अज्ञान किसी अन्य साधन से नष्ट नहीं हो सकता ।

कर्म बन्धन का कारण

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तुपलब्धये ।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किंचित्कर्मकोटिभिः ।। वि. चु : ११

संसार में कई व्यक्ति, भक्ति, पूजा, उपासना, ध्यान, योग, मन्त्र, तन्त्र, जप, अनुष्ठान, यज्ञ, प्रार्थना आदि विविध प्रकार के कर्म करते हैं जिनसे केवल चित्तशुद्धि होती है । इन कर्मों से वस्तुपलब्धि अर्थात् आत्मानुभूति नहीं हो सकती। आत्मानुभूति तो केवल आत्मा–अनात्मा विचार से ही होती है, करोड़ों कर्मों से कभी नहीं हो सकती । अज्ञानवश जिसे विस्मृत कर दिया है उसे पुनः स्मृति में लाना मात्र कर्तव्य है । अज्ञान का नाश तो केवल आत्म ज्ञान द्वारा ही सम्भव है ।

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेद मायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।

– मुण्डकोपनिषत : १।२।१२

कर्म से प्राप्त हुए सम्पूर्ण लोक भोग एवं पद नाशवान् होने से जन्म–मृत्यु चक्र में डालने वाले हैं । विवेकी ब्राह्मण उनसे वैराग्य को प्राप्त करें, क्योंकि संसार में अनित्य कर्म, उपासना द्वारा नित्य प्राप्त रूप आत्मा नहीं मिल सकता ।

अतः उस नित्य वस्तु ब्रह्म का साक्षात् करने के अभिलाषी साधक, ज्ञान प्राप्ति के लिये गुरु एवं आश्रम उपेयोगी सामग्री लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जावें ।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्नागतागतं कामकामा लभन्ते ।।

– गीता : ९/२१

हे मुमुक्षु ! जो केवल सकाम कर्म तथा उपासना करनेवाले हैं वे उस विशाल स्वर्ग लोक के सुख को भोगकर पुण्य क्षीण हो जाने पर पुनः इस मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं । इस प्रकार तीनों वेदों में कहे गये कर्म के शरण हुए और भोग की कामना वाले पुरुष आवागमन को प्राप्त होते हैं ।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।।

– गीता : २/४५

हे अर्जुन ! वेदों का विषय तीन गुण रूप संसार है, जो जन्म–मरण का हेतु है । अतः तुम कर्म, उपासना का त्याग कर त्रिगुणातीत, निर्द्वन्द्व, नित्य, शुद्ध आत्मभाव में स्थित हो जाओ। योगक्षेम की चिन्ता से रहित हो और आत्मवान् बनो।

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।

– गीता : ८/१६

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक तक के सब लोक पुनरावर्ती स्वभाववाले है । परन्तु हे कौन्तेय ! मुझे प्राप्त होने वाले अर्थात् आत्मभाव को प्राप्त करने वाले साधक पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते हैं ।

भगवान किसी सिद्धान्त को बल देकर समझाने के लिये उस सिद्धान्त के विरोधी तथ्य को भी उसी के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं ताकि वह साधक उन्हें तुलनात्मक दृष्टि से स्पष्ट समझ सके कि क्या ग्रहण करने योग्य है एवं क्या त्याग करने योग्य है ।

प्रथम पंक्ति में कहा ब्रह्मलोक तक के सब लोक पुनरावर्ती है । इसके विपरीत, जो पुरुष आत्मा का साक्षात् अनुभव करलेता है कि वह परमात्मा मैं हूँ ऐसा ज्ञानी पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता है ।

वेदान्त में क्रम मुक्ति का एक सिद्धान्त प्रतिपादित है । इसके अनुसार जो साधक कर्म, उपासना का एक साथ अनुष्ठान करता है वह कर्म, उपासना के समुच्चय के फल स्वरूप सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के लोक जाकर वहाँ आत्मज्ञान प्राप्तकर मुक्त हो सकता है । आत्म विचार करना आवश्यक होता है । परन्तु कोई मुमुक्षु वर्तमान जीवन में ही किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण ग्रहण कर वेदान्त तत्त्व का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन कर अपने वास्तविक नित्य आत्म स्वरूप का साक्षात् अनुभव करलेता है । वे साधक ब्रह्म के साथ–साथ सोऽहम् भाव करलेते हैं, उन्हें पुनः संसार में अज्ञानी सकामी पुरुषों की तरह सृष्टि काल में नहीं आना पड़ता है । वे स्वप्न संसार को पुनः नहीं लौटते है ।

पाषाण लोहमणि मृण्मय विग्रहेषु
पूजा पूनर्जनन भोगकरी मुमुक्षोः ।

तस्मात् यतिः स्वहृदयार्चनमेव कुर्यात्
बाह्यार्चनं परिहरेद पुनर्भवाय ।।– मैत्रेय उप. २/२६

पत्थर, सोना अथवा मिट्टी द्वारा बनाई गई मूर्तियों की पूजा, मोक्ष की इच्छा रखने वालों को, फिर से जन्म और भोग दिलाने वाली होती है । अतः मोक्ष के साधक को मूर्ति पूजा अनित्य जान, इस साधन पथका त्याग कर किसी गुरु से आत्मज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करना ही श्रेयस्कर होगा । आत्मपुजा, सोऽहम् भाव ही सर्वश्रेष्ठ साधन है ।

उत्तमा तत्त्वचिन्तैव मध्यं शास्त्र चिन्तनम् ।
अधमा मन्त्रचिन्ता च तीर्थ भ्रान्त्यधमाधमा ।।

– मैत्रेय उप. : २/२१

आत्मतत्त्व चिन्तन सबसे उत्तम साधन है । शास्त्र चिन्तन मध्यम् श्रेणी का साधन है । मन्त्र चिन्तन अधम श्रेणी का साधन मन्दबुद्धि वालों के लिये है तथा तीर्थ दर्शन, स्नान द्वारा कल्याण की आशा रखनेवाले अत्यन्त निकृष्ट श्रेणी के लोग होते हैं ।

अस्तु ! परमार्थ प्रेमी साधकों को आत्मज्ञान प्राप्ति के लिये अधिक से अधिक प्रयत्न करना चाहिये । आत्मज्ञान प्राप्ति के अन्य सहयोगी साधनों में ही जीवन पर्यन्त बन्धे नहीं रहना चाहिये ।

ज्ञानेनैव हि संसार विनाशो नैव कर्मणा ।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं स्वगुरुं गच्छेद्यथा विधि ।।

–३५ भावना उप.

संसार का नाश तो आत्मज्ञान द्वारा ही हो सकेगा । कोटि कर्मों के द्वारा कदापि नहीं हो सकेगा । अतः विधि पूर्वक साधन चतुष्ट सम्पन्न एवं गुरु आश्रम उपयोगी सामग्री लेकर श्रद्धा सहित श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास ज्ञान के लिये चले जायें ।

दग्धस्य दहनं नास्ति पक्वस्य पचनं यथा ।
ज्ञानाग्निदग्धदेहस्य न च श्राद्धं न च क्रिया ।।

–पैङ्गल उप. : ४/७

जिस तरह पहले से जले हुए को फिर कोई नहीं जलाता है या पहले से मरे हुए प्राणी को कोई फिर से नहीं मारता या पहले से पके हुए दाल, भात अन्न को कोई फिर से नहीं पकाता है । उसी तरह ज्ञानाग्नि से दग्ध हुए ज्ञानी के लिये कोई अन्तिम संस्कार, श्राद्ध आदि सामाजिक क्रिया करने की आवश्यकता नहीं रहती है ।

तीर्थे दाने जपे यज्ञे काष्ठे पाषाणके सदा ।
शिवं पश्यति मूढात्मा शिवे देहे प्रतिष्ठिते ।।

जाबाल दर्शन उप. : ४/५७

अखण्ड कल्याण स्वरूप परमात्मा इसी देह में विराजमान है । उसे न जानने वाला मूर्ख तीर्थ, स्नान, जप, पूजा, दर्शन, यज्ञ, काष्ठ और पाषाण में ही परमात्मा को खोजा करता है ।

आत्मतीर्थं समुत्सृज्य बहिस्तीर्थानि यो व्रजेत ।
करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्गते ।।

जाबाल दर्शन उप. : ४/५०

प्रत्यक्ष आत्म स्वरूप तीर्थ का त्याग करके परोक्ष बाह्य तीर्थ में जो भटकता रहता है वह मानो ऐसा मूर्ख है जो हाथ में रखे महारत्न का त्याग करके काँच का टुकड़ा पकड़कर प्रसन्न मुद्रा से फिरता रहता है ।

ज्ञान शौचं परित्यज्य बाह्ये यो रमते नरः ।
स मूढः काञ्चनं त्यक्त्वा लोष्ठं ग्रह्णाति सुव्रत ।।

जाबाल दर्शन उप. : १/२२

ज्ञान रूप पवित्रता को त्याग कर जो पुरुष बाहरी पवित्रता में ही रमता है वह तो स्वर्ण को त्याग कर चमकते हुए लोहे के टुकड़े को ग्रहण करने वाले मूर्ख के समान है ।

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
न चास्ति किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेत न स तत्त्ववित ।।

–जाबाल दर्शन उप. : १/२३

ज्ञान योगी ज्ञान रूपी अमृत से तृप्त हो जाता है । संसार में उसके लिये कुछ भी करना शेष नहीं रहता है । जैसे अमृत पान के पश्चात् अमर होने के लिये कुछ भी औषधि सेवन करने की आवश्वकता नहीं रहती है । यदि वह अपने मुक्ति के लिये कुछ कर्म शेष है, ऐसा मानता है तो वह तत्त्वज्ञानी नहीं है । आत्मज्ञनी सन्तों के लिये तीनों कालों में कहीं भी, कुछ भी कर्तव्य नहीं है ।**'तस्य कार्यं न विद्यते' ।**

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।

– गीता : १६/२३

जो पुरुष शास्त्र विधि को त्यागकर अपनी इच्छासे मन माना आचरण करता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है, न परमगति को और न सुख को प्राप्त होता है ।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।

गीता : १६/२४

अतः तेरे लिये कर्तव्य–अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है– ऐसा जानकर तू इस लोकमें शास्त्रविधिसे नियत किये हुए कर्तव्य–कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्र विधिके अनुसार ही कर्तव्य–कर्म करना चाहिये ।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।।

गीता : १७/५

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।।

गीता : १७/६ ।।

जो मनुष्य शास्त्र विधिसे रहित सत्यासत्य, नित्यानित्य विवेक रहित मन कल्पित कर्म करने वाले हैं, जैसे स्नान न करना, अग्नि पर चलना, बर्फ में बैठना, नंगे पैर धूप में चलना, कान, आंख को बन्द रखना, मौनी बनकर संकेत से या लिखकर बात करना, कांटो पर शयन करना, जीभ काट मूर्ति पर चढ़ाना, मुर्दे का मांस खाना, मल खाना, एक हाथ से काम करना, एक पैर से खड़े रहना, नेत्र दृष्टि से

दर्पण तोड़ देना, किसी की मृत्यु हेतु अघोर कर्म करना आदि घोर कष्टप्रद तप को जो तपते हैं । वे दम्भ व अहंकार से युक्त अपने यश, कीर्ति, नाम प्रचार हेतु अधार्मिक होते हुए भी अपने को धार्मिक चिह्न, राम नाम की चादर, गले में बड़ी मोटी रुद्राक्ष माला, हाथ में दण्ड, कमण्डल व धर्म शास्त्र, बड़े लम्बे तिलक, विभुति, मृगचर्म या बाघाम्बर लपेटना उन्हें आसन बनाकर बैठना, जटा, दाढ़ी, मूंछ आदि धारण कर कामना और आसक्ति बल के अभिमान से जो फूले रहते हैं ।

वे शरीर रूप से स्थित पंच भूतों और अन्तःकरण में स्थित मन, बुद्धि, अहंकार रूप मुझ साक्षी आत्मा को ही कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को तू आसुरी स्वभाव वाला जान ।

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ।।

– २/१८ संन्यास उप.

सकाम कर्म करने से जीव लोक परलोक के बन्धनों में पड़ जाता है । और ज्ञान प्राप्त करने से वह आवागमन से मुक्त हो जाता है । अतः तत्त्व का दर्शन करने वाले अर्थात् मैं द्रष्टा साक्षी आत्मा भाव में रहने वाले ज्ञानी लोग कर्म नहीं करते हैं ।

अविचार कृतोबन्धो विचारान्मोक्षो भवति ।
तस्मात्सदा विचारयेत् जगज्जीवपरमात्मनो ।।

– पैंङ्गल उप. २

आत्मा–अनात्मा, जड़–चेतन, दृश्य–द्रष्टा, शिव–शव, स्वयं प्रकाश–पर प्रकाश, क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ के अविचार से ही जीव को बन्धन होता है और अनात्म देह संघात् से भिन्न अपने द्रष्टा, साक्षी, नित्यात्मा को जान लेना ही मोक्ष का हेतु है । अतः जगत्, जीव और ईश्वर का ही सदा विचार करना चाहिये ।

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः ।
त्यजेदज्ञान निर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत ।।

– स्कन्दोपनिषत् : १०

यह देह ही, प्रत्यक्ष, अपरोक्ष, नित्य, परमात्मा का देवालय है । उसमें जीव ही शिव रूप है । अतः अज्ञान रूप देह भाव, कर्ताभाव को त्याग करके, वही 'शिव स्वरूप, चिदानन्द स्वरूप मैं हूँ' इस आत्म चिन्तन द्वारा ही हृदयस्थित परमात्मा की पूजा करना चाहिये । प्रतिमा की पूजा तो अज्ञानी लोगों के मन में परमात्मा के प्रति श्रद्धा जाग्रत करने के लिये कल्पना की गई है ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

– केनोपनिषत् : ६

जिससे सब उत्पन्न होते है, जिसकी शक्ति का अंश पाकर सब जीव अपना जीवन निर्वाह सम्बन्धी कर्म करते हैं तथा प्रारब्ध भोगकर सब जीव जिसमें लय हो जाते हैं वह ब्रह्म है, तुम उसीको सोऽहम् भाव से अहंग्रह उपासना करना। परन्तु अज्ञानी लोग पाषाण, धातु, मिट्टी, काष्ठादि की मन कल्पित मूर्ति बनाकर जिसे भगवान मानते हैं उस अज्ञान कल्पित मूर्ति की तुम कभी उपासना मत करना, क्योंकि वह परमात्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है ।

यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्य चेतसः । १५/११

जिन्होंने अपने अन्तःकरण को निष्काम कर्म, उपासना द्वारा शुद्ध नहीं किया है उन अज्ञानी जनों के द्वारा बाह्य जप, तप, मंत्र, माला, पूजा पाठ, तीर्थ मन्दिर आदि साधन करके भी वे अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते हैं ।

आत्मा व अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निदिध्यासितव्यो

हे मैत्रेय ! यह अपना आत्म स्वरूप ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान करने योग्य है । आत्मज्ञान हो जाने पर सभी का ज्ञान हो जाता है । अनदेखा, देखा हुआ–सा हो जाता है, अनजाना जाना हुआ–सा हो जाता है । क्योंकि अधिष्ठान आत्मा से भिन्न यह नाम, रूप अध्यस्त जगत् कुछ भी नहीं है ।

जिस आदेश के द्वारा न सुना पदार्थ भी सुना हो जाता है, न मनन किया हुआ पदार्थ भी मनन किया हुआ हो जाता है और अनिश्चित पदार्थ भी सुनिश्चित हो जाता है, वह अक्षर आत्मा तुम स्वयं हो ।

लोक में जिस प्रकार मिट्टी के एक पिण्ड द्वारा सम्पूर्ण मिट्टी के कार्य समूह का ज्ञान हो जाता है । आकार तो वाणी के आधार नाम मात्र ही है । सत्य वस्तु तो केवल मिट्टी ही है । इसी प्रकार एक अखण्ड आत्म सत्ता का बोध हो जाने पर समस्त नाम, रूप मिथ्या संसार के दर्शन में एक ब्रह्म का ही साक्षात्कार हो जाता है । नाम रूप तो वाणी का विकार है ।

कर्म से मोक्ष नहीं

जगत् का उपादान कारण अज्ञान है । उस अज्ञान का नाश होने से जगत् भ्रम का नाश स्वतः ही हो जाता है, जैसे अंधकार के विलीन होते ही अन्धकारजन्य भ्रम प्रतीति का भी अभाव स्वतः ही हो जाता है । अज्ञान का नाश आत्म ज्ञान द्वारा ही होता है, अन्य करोड़ों कर्म, उपासना द्वारा नहीं ।

मुक्ति का हेतु कर्म एवं उपासना नहीं, एकमात्र आत्मज्ञान ही है । कर्म–उपासना से मुक्ति तो तभी सम्भव हो सकती थी जब जीव का बन्धन सत्य होता; किन्तु बन्धन तो रस्सी में प्रतीत होने वाले सर्प की तरह आत्मा में मिथ्या प्रतीत हो रहा है। उस मिथ्या भ्रम की निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञान से ही हो सकती है, कर्म या उपासना से नहीं । जैसे मन्द अन्धकार में भासने वाला सर्प किसी क्रिया द्वारा दूर नहीं हो सकेगा, अपितु प्रकाश द्वारा रस्सी अधिष्ठान के ज्ञान से ही हो सकेगा । उसी प्रकार आत्मा के अज्ञान से जो बन्धन भ्रम उदय हुआ है, वह आत्मा के ज्ञान से ही दूर हो सकेगा ।

मुक्ति का हेतु कर्मोपासना नहीं

मोक्ष प्राप्ति का विषय जो ब्रह्म है, यदि वह स्वर्गलोक और बैकुण्ठ लोकादि के समान देश काल परिच्छेदवर्ती माना जाता, तो अवश्य उसकी प्राप्ति के निमित्त कर्म–उपासना साधन की आवश्यकता होती, किन्तु अखण्ड ब्रह्म के लिये ऐसा देश, काल परिच्छिन्नता का प्रमाण

कहीं नहीं मिलता है । यदि आत्मा में बन्धन सत्य होता तो वह कर्म से निवृत्त होता किन्तु आत्मा में बन्धन अज्ञान से ही भासता है इसलिए ज्ञान द्वारा ही निवृत्त होगा, कर्म से नहीं । ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती ।

ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना (रामायण)

ज्ञानादेव तु कैवल्यम्ः, ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः (वेद)

'य एवः हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः' यो मनसि तिष्ठन् मनसोऽन्तरो यस्य मनः शरीरं यं मनो न वेद यो मन सोन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः – बृह उप ३/७

हे गार्गी ! यह जो हृदय के अन्दर ही ज्योति रूप पुरुष विद्यमान है, यही तेरी आत्मा है '**तत्त्वमसि**' (वह तू है) । जो मन में बैठा हुआ भी, मन से बाह्य देश में भी है, मन जिस परमात्मा का शरीर है, जिस परमात्मा को मन नहीं जान सकता, जो मन के अन्दर स्थित हुआ प्रेरणा दे रहा है, वही अन्तर्यामी अमृत तेरा आत्मा है ।

इस प्रकार श्रुति उस ब्रह्म को अपरोक्ष रूप से सबका अपना आप कहकर आत्मरूप से बोध कराती है । इस प्रकार आत्मदेव को कर्म द्वारा नहीं बल्कि ज्ञान द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है ।

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मन यद्वाचो ह वाचँ स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुः अतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।

– केन उप. २

आत्म ब्रह्म देह, प्राण, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि संघात् से भी समीप है, जो मन का भी मन, आँख का भी आँख, श्रोत्र का भी श्रोत्र अर्थात् जिसके बिना मन, आँख, श्रोत्र अपना – अपना कार्य करने में सर्वथा असमर्थ है । जिसकी प्रेरणा से सब जड़ देह संघात्, चैतन्य–सा होकर कार्य करता है एवं जो सबका साक्षी है, वही

आत्मा है । किन्तु सबको जानने, बताने, कहने वाला 'दसवाँ कहाँ है' की तरह स्वयं को ही भूल गया है ।

द्रष्टान्त : एकबार दस व्यक्ति नशाकर दूसरे गाँव रामलीला देखने चले । रास्ते में उन्हें नदी पार कर के जाना पड़ा । नदी पार हो जाने पर उन दस पुरुषों में से एक को विचार आया कि हमें गिनकर देख लेना चाहिये कि हममें से कोई व्यक्ति डूबा तो नहीं है । सबके गिनने पर पता लगा कि वे नव (९) हैं । तब एक के खो जाने की सबने घोषणा की हे भाईयों ! हममें से कोई एक नदी में डूब गया है । चलो उसकी नदी में हम चारों तरफ खोज करें । सभी लोगों ने नदी में उसे ढूंढा । अन्त में वह दसवां नहीं मिलने पर, उस की मृत्यु का वे दुःख मनाने, रोने, चिल्लाने लगे । उन्हें रोता देख किसी विवेकवान् पुरुष ने पूछा की भाई तुम नदी के तटपर किस हेतु रो रहे हो ? तब उन रोने वालों में से किसी एक ने उत्तर दिया अरे भाई ! हम घर से दस लोग रामलीला देखने चले थे, किन्तु नदी पार करने में हममें से कोई एक साथी डूब मरा है । हमने उसे बहुत खोजा किन्तु वह नहीं मिला । उस विवेकवान् ने पूछा – अब आप कितने लोग गिन रहे है ? उत्तर दिया नव । उस विवेकवान ने कहा तुम रोना बन्द करो दसवाँ न मरा है न डूबा है, वह यहीं है । तब दुःखीत् लोगोंने कहा यदि वह डूबा या मरा नहीं तो वह हमें दिखता क्यों नहीं, मिलता क्यों नहीं ? उस ज्ञानी ने कहा तुममें से कोई एक समझदार व्यक्ति मेरे साथ आओ, मैं उससे अभी मिलादेता हूँ । विवेकवान् व्यक्ति ने सबको एक लाइन में खड़ा कर गिनती बोलने के लिये कहा । नवम व्यक्ति पर गिनती समाप्त हुई तो उस दसवें व्यक्ति को एक बेंत का स्पर्श किया कि तू इन को गिनने में ही लगा है पर अपना नम्बर तो बोल ! तो उसने कहा दस । अरे भैया मिलगया ! मिलगया ! आप को लाख–लाख धन्यवाद ! इस द्रष्टान्त द्वारा यही जाना गया कि जो सबको गिनने, जानने वाला पुरुष था वह स्वयं को गिनना, जानना भूल गया था । जैसे

उस प्राप्त दसवें पुरुष को प्राप्त करने के लिये अन्य साधन करने की आवश्यकता नहीं है । उसी प्रकार जीव को प्राप्त आत्मा की प्राप्ति हेतु स्वरूप ज्ञान की ही आवश्यकता है। अन्य साधन करने की किंचित् भी आवश्यकता नहीं है ।

येनेदं सर्वं विजानाती तं केन विजानीयाद् विज्ञातारमरे केन विजानीयात् ? बृह. उप. २।४।१४

जिसके द्वारा यह सब कुछ जाना जाता है, वह स्वयं आप किसके द्वारा जाना जाय ? अरे ! सबको जानने वाले को किस शक्ति से जान सकेगें ?

भ्रान्त्या प्रतीतः संसारो विवेकान्नतु कर्मभिः ।
न हि रज्जुरागारोपो घण्टाघोषान्निवर्तते ।।

– पंचदशी

अज्ञान से प्रतीयमान संसार, ज्ञान से ही निवृत हो सकता है, कर्म से कदापि नहीं। जैसे रज्जु में भ्रान्ति जन्य सर्प घण्टाघोष से निवृत होना सम्भव नहीं है या दंड प्रहार द्वारा उसे मारना भी सम्भव नहीं है ।

कर्म द्वारा मोक्ष प्राप्ति मानी जावे तो वह स्वर्ग, ब्रह्मादिक लोक भी फसल, फल, मकान, सन्तान, शरीर सामानवत् अनित्य ही होगा । अस्तु अनित्य कर्मों द्वारा कभी भी नित्य वस्तु आत्मा की उपलब्धी नहीं हो सकती। कर्मोपासना का फल स्वर्ग तथा ब्रह्मलोकादि भी अनित्य ही है। क्योंकि साधना से प्राप्त फल भोग होने पर वहाँ से पुनः गिरना पड़ता है ।

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोर्जुन

– गीता : ८–१६

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति । गीता : ६–२१

कर्म द्वारा मिलने वाला फल नाशवान ही होता है ।

अन्तवन्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्प मेधसाम् ।

– गीता : ७–२३

अतः नित्य प्राप्त रूप आत्म वस्तु को ज्ञान द्वारा न जानकर भेद उपासना कर अखंड शान्ति प्राप्त करने की जो लोग आशा रखते है, उन भेदवादियों की वह उपासना अविवेक पूर्ण ही है, क्योंकि इस प्रकार भेदोपासना द्वारा जीव जन्म–मरण के चक्र से छूट अखंडानन्द को प्राप्त नहीं हो पाता है ।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।।

– गीता : ७/२४

बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुपम, अविनाशी, परम भावको न जानते हुए मन–इन्द्रियों से परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा को मनुष्य की भाँति शरीर धारण करनेवाला मानते हैं ।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।।

– गीता : ७/२५

अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सब के प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जनसमुदाय मुझ जन्मरहित अविनाशी ब्रह्म को नहीं जानता अर्थात् मुझ को जन्मने–मरनेवाला समझते हैं ।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।

– गीता : ९/२३

हे अर्जुन ! यद्यपि श्रद्धासे युक्त जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मुझको ही पूजते हैं; किन्तु उनका वह पूजन अविद्या पूर्वक अर्थात् अज्ञान पूर्वक है ।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ।।

– गीता : ९/२४– गीता : ९/२३

इस सम्पूर्ण सृष्टि में, मैं ही समस्त यज्ञों का भोक्ता हूँ और स्वामी भी मैं ही हूँ। किन्तु अज्ञानी अन्धे मनुष्य मुझे आत्मा रूप से, अधिष्ठान रूप से न जानने के कारण अपनी विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिये विभिन्न प्रकार के कल्पित देवी देवताओं की उपासना करते हैं । जो जो सकाम भक्त जिस जिस देवता की श्रद्धा से पूजन करते हैं वे लोग उस देवताओं से मेरे ही द्वारा निश्चित किये हुए भोग को प्राप्त करते हैं । परन्तु उन अल्प बुद्धि वालों का वह फल, जो मेरे द्वारा देवताओं के माध्यम से प्राप्त करते हैं, वह सब नाशवान् होता है । जिससे वह बार–बार जन्म–मृत्यु को प्राप्त होते हैं । किन्तु जो भक्त मुझे अपने आत्म रूप से अर्थात् सोऽहम् रूप से भजते हैं, वे मुझ को ही प्राप्त होते हैं । उनका प्राण अज्ञानियों की तरह अन्य लोक व अन्य शरीर में नहीं जाते हैं । बल्कि यहीं पर प्राण महाभूतों में लीन हो जाता हैं । जैसे घट, मठ के नाश होते ही घट, मठ का आकाश महाकाश रूप हो जाता है ।

विवेक चूड़ामणि

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये ।
वस्तु सिद्धिर्विचारेण न किंचित् कर्म कोटिभिः ।। ११ वि. चु

कर्म, उपासना चित्त की शुद्धि अर्थात् आत्म जिज्ञासा उदय होने के पूर्व तक ही उपयोगी है। आत्म जिज्ञासा '**अथातो ब्रह्म जिज्ञासा**' उदय होने के बाद आत्मानुभूति (वस्तु उपलब्धि) हेतु कर्म का त्याग ही कर्तव्य है । वस्तु सिद्धि तो सद्गुरु द्वारा वेदान्त श्रवण, मनन के विचार से ही होती है, करोड़ों कर्मों द्वारा आत्मानुभूति नहीं होती ।

सम्यग्विचारतः सिद्धा रज्जुतत्त्वावधारणा ।
भ्रान्तोदित महासर्प भयदुःखविनाशिनी ।।

– वि. चूड़ा : १२

मन्द अन्धकार में दिखाई देने वाली रस्सी में भ्रम से उत्पन्न हुए महान सर्प भय तथा दुःख का नाश तो रज्जु के ज्ञान द्वारा होता है । पत्थर या लकड़ी द्वारा मारने या भगाने से रस्सी पर आरोपित सर्प भ्रम दूर नहीं होगा ।

अर्थस्य निश्चयो दृष्टो विचारेण हितोक्तितः ।
न स्नानेन न दानेन प्राणायामशतेन वा ।।

– वि चूड़ा : १३

कल्याणप्रद युक्तियों द्वारा विचार करने से ही वस्तु का निश्चय होता देखा जाता है । स्नान, दान अथवा सैकड़ों प्राणायाम से नहीं ।

अतो विचारः कर्तव्यो जिज्ञासोरात्मवस्तुनः ।
समासाद्य दयासिन्धुं गुरुं ब्रह्मविदुत्तमम् ।।

– वि. चूड़ा: १५

अतः जिज्ञासा उदय होने के पश्चात् मुमुक्षु को कर्मोपासना का भली प्रकार त्याग करके ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ दया सागर गुरुदेव की शरण में जाकर जिज्ञासु को आत्म तत्त्व का विचार करना चाहिये । क्योंकि –

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया ।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्धयति नान्यथा ।।

– वि. चूड़ा. ५८

जीव को मोक्ष की प्राप्ति न अष्टांग योग साधन से सिद्ध होती है, न सांख्य से, न कर्म से और न विद्या से होती है । वह तो केवल सद्गुरु द्वारा ब्रह्मात्मैक्य–बोध (सोऽहम्) से ही होता है और किसी प्रकार नहीं ।

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान् ,
कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः
आत्मैक्यबोधेन बिनापिमुक्तिर्न ,
सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ।

– वि. चूड़ा. : ६

भले ही कोई शास्त्रों की व्याख्या करे, देवताओं का यजन करे, नाना शुभ कर्म करे अथवा देवताओं को भजे, तथापि जब तक ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध नहीं होता है, तब तक सौ ब्रह्माओं के बीतजाने पर भी अर्थात् सौ कल्पों में भी मुक्ति नहीं हो सकती है ।

देवी गीता

क्रियाः करोति विविधा धर्माधर्मैकहतेवः ।
नानायोनीरततः प्राप्य सुखदुःखैश्चयुज्यते ।।

– देवीगीता : ४४

धर्म अधर्म के कारण जीव अनेक प्रकार की क्रिया करता है और यह जीव अनेक योनियों को प्राप्त होकर सुख–दुःख भोगता है ।

घटी यंत्रवदेस्य न विरामः कदापिहि ।
अज्ञानमेव मूलंस्यात्ततः कामः क्रियास्ततः ।

– देवीगीता : ४/६

घटी यंत्र के समान यह जीव सदा चौरासी लाख योनियो में विचरता ही रहता है, इसको कभी विश्राम नहीं मिलता । आजतक अनेक सृष्टि प्रलय हुई, पर इस जीवको विश्राम नहीं हुआ इसका कारण–स्वरूप अज्ञान है । इस अज्ञान से अपने सच्चिदानन्द आत्म स्वरूप को न जानकर यह जीव देह संघात् में अहं बुद्धि करता है जिसके फल स्वरूप यह संसार चक्र में भ्रमित होता रहता है ।

तस्मादज्ञान नाशाययतेतनियतंनरः ।
एतद्विजन्म साफल्यं यदज्ञानस्य नाशनम् ।।

– देवीगीता ४/७

इसलिए अनादि अज्ञान के नाश के निमित्त आत्मज्ञान का साधन करना चाहिये, इसी में मानव जीवन की साफल्यता है ।

न कर्म तज्ञं नोपास्ति विरोधाभावतोगिरे ।
प्रत्युताशाज्ञान नाशेकर्मणा नैवभाव्यताम् ।।

– देवीगीता : ६

अज्ञान से उत्पन्न कर्म अपने कारण अज्ञान का नाश करने में समर्थ नहीं है । क्योंकि इन दोनों का परस्पर विरोध नहीं है । कर्म द्वारा अज्ञान के नाश की आशा नहीं करनी चाहिए ।

शमोदमास्ति क्षाचवैराग्यं सच्व संभव : ।
तावत्पर्यन्तमेवस्युः कर्माणिनततः परम ।।

– देवीगीता : ४/१६

शम अर्थात् अन्तर इन्द्रियों का निग्रह, दम अर्थात् बाह्य इन्द्रियों का निग्रह, तितिक्षा–शीत, उष्ण आदि का सहना,वैराग्य–दोनों लोक के फल में उपरामता और अन्तःकरण की शुद्धि जब तक यह प्राप्त न हो तब तक कर्म करता रहे, फिर आत्म जिज्ञासा उदय होने पर कर्म की आवश्यकता नहीं ।

यावदांतर पूजायाम धिकारोभवेन्नहि ।
तावद्बाह्यामिमां पूजां श्रेयज्ञायते तुतां त्यजेत ।।

– देवीगीता : ४३

जब तक ब्रह्म जिज्ञासा उदय नहीं हुई है तभी तक बाह्य पूजा करता रहे, जिज्ञासा होने के बाद इच्छा करके सब कर्म का त्याग कर ''तत्त्वमसि'' महावाक्य का अनुभव करें ।

शिव गीता

न कर्मणामनुष्ठानैर्न दानैस्तपसापि वा ।
कैवल्यं लभते मर्त्यः किन्तु ज्ञानेन केवलम् ।। २ ।।

न कर्मों के अनुष्ठान, न दान, न तप से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है बल्कि केवल ज्ञान से ही मुक्ति होता है ।

फलं कामय मानास्ते चैहिकामुष्मिकादिकम् ।
क्षयिष्णवल्पं सातिशयं तत कर्म फलं मतम् ।। १४/३६

हे महाबाहो ! जो आत्मा की शरण में आजाते हैं वे नाम रूप संसार माया को तर जाते हैं, किन्तु जो नाम रूप संसार माया में फंसे हुए हैं और जिनकी आत्मा में श्रद्धा नहीं है वे इस लोक और परलोक में अनेक प्रकार के फल की इच्छा करने वालें हैं । उनको कर्मानुसार फल मिलता है, वे लोक परलोक के सुख भोगकर, थोड़े काल में पुनः इस मृत्युलोक में जीव जन्म को प्राप्त होते हैं । कारण कि उन्हें तो कर्मफल ही इष्ट है और कर्मफल क्षय होनेवाला है । अतः जीव थोड़ा सुख उन लोकों में शिघ्र भोगकर वहाँ से पुनः इसी लोक में आजाता है । क्योंकि कर्मों से मिलने वाला फल अनित्य ही होता है ।

तदविज्ञाय कर्माणि ये कुर्वन्ति नराधमाः ।
मातुः पतन्ति ते गर्भे मृत्यार्वक्ते पुनः पुनः ।। १४/३७

इस बात को न जानकर जो अधम मनुष्य कर्मों को करता रहता है वे माता–पिता के गर्भ पितृलोक से उत्पन्न होकर बारम्बार मृत्यु के मुख में पड़ते रहते हैं ।

कोटि जन्मार्जितैः पुण्यैर्मयि भक्तिः प्रजायते ।।३८

स एव लभते ज्ञानं मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः ।
नान्य कर्माणि कुर्वाणी जन्म कोटि शतैरपि ।। २४/३६

करोड़ों जन्म के संचित् किये पुण्य से आत्म जिज्ञासा उदय होती है । फिर वही श्रद्धायुक्त मुमुक्षु ज्ञान को प्राप्त हो मुक्ति लाभ करता है, दूसरे जिन्हें ब्रह्म जिज्ञासा नहीं हुई है वे करोड़ों जन्म भी कर्म करने से मुझे प्राप्त नहीं होते हैं ।

ततः सर्वं परित्यज्य मद्भक्तिं समुदाहर ।
सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।। २४/४०

मेरी पत्नी सीता का हरण रावण ने कर लिया है, मैं क्षत्रिय हूँ, उसे मैं मारकर प्राप्त करूँगा यह राम की मनोदशा जान,भारद्वाज ऋषिने कहा हे राम ! तुम यह सब अंहकार, शोक, चिंता एवं कामना का त्याग कर केवल आत्म ज्ञान प्राप्त करो । दूसरे सब देश, जाति, कुल, एवं ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राण तथा अन्तःकरण, इन देह संघात् के समस्त धर्मों का अंहकार त्याग करके, गुण ही गुण में बर्तते है, ऐसा जानकर अपने को समस्त त्रिपुटियों का प्रकाशक द्रष्टा, साक्षी मात्र जान संसार से वैराग्य एवं आत्म अभ्यास रूप ज्ञानयोग का साधन करो, तो तुम्हें किसी प्रकार का पाप, ताप, सन्ताप, बन्धन नहीं लगेगा । अतः हे राम ! तुम आत्म चिन्तन अर्थात् द्रष्टा, साक्षी, शिवोहम् भाव के अतिरिक्त अन्य चिन्तन मत करो ।

अतः सयतचित्तस्त्वं नित्यं पठ महीपते ।
अनायासेन तेनैव सर्वथा मोक्षमाप्स्यसि ।। १३/३८

हे राम ! तुम्हारा अन्तःकरण जो संशय के वश हो रहा है । इस कारण तुम नित्य इस आत्म तत्त्व का चिन्तन करो, इससे अनायास तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी । यह शिवगीता का अध्याय १३ मोक्ष प्रदान करने वाला है ।

विश्वं शिवमयं यस्तु पश्यत्यात्मानमात्मना ।
तस्य क्षेत्रषु तीर्थेषु किं कार्यं वान्य कर्मसु ।। १६ /१६

जो अपने आत्मा से ही आत्मा को देखते हैं, अर्थात् अपने को देहसे भिन्न द्रष्टा, साक्षी, आत्म रूप से जानते हैं एवं समस्त नाम, रूप दृश्य जगत् के भीतर एक ही चैतन्य शिव स्वरूप आत्मा को देखते हैं, उनको तीर्थ मन्दिर जाने एवं पूजा, पाठ, यज्ञ, ध्यान, समाधि आदि करने की आवश्यकता नहीं है ।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्म तृप्तश्च मानवः
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्यकार्य न विद्यते । –३/१७

जो मनुष्य आत्म भाव में ही रमण करने वाला और आत्मा में ही तृप्त तथा आत्मा में ही सन्तुष्ट हो उस आत्मनिष्ठ ज्ञानी महापुरुष के लिये किसी प्रकार कोई कर्तव्य नहीं है ।

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ।।

२/९८ : सन्यास उ.प

कर्म करने से जीव को बन्धन होता है और ज्ञान से मुक्त होता है । अतः तत्त्व का दर्शन करने वाले यति लोग कर्म नहीं करते हैं ।

न कर्मणा न प्रजया न चान्येनापि केनचित् ।
ब्रह्मवेदनमात्रेण ब्रह्माप्नोत्येव मानवः ।। कठ रूद्र उप. ९

कर्मों से नहीं, पुत्रपौत्रादि संतति से भी नहीं, ब्रह्म के ज्ञान मात्र से मानव ब्रह्म की प्राप्ति करता है ।

अमृतेन तृप्तस्य पयसा किं प्रयोजनम् ।।

४/८ पैङ्गलो. उप.

अमृत से जो तृप्त हुआ है उसका दूध से कोई प्रयोजन नहीं । उसी तरह अपने स्वरूप का बोध होने पर वेद से क्या प्रयोजन ?

ज्ञानामृततृप्तयोगिनो न किञ्चित्कर्तव्यमस्ति ।
तदस्ति चेन्न स तत्त्वविद्भवति ।। ४/९ पैङ्गलो. उप.

ज्ञानामृत से जो योगी तृप्त हो गया है उसका कोई भी कर्तव्य शेष नहीं बचता और यदि उसे कोई कर्तव्य है तो फिर वह तत्त्वज्ञ ही नहीं ।

''अविचारकृतो बन्धो विचारान्मोक्षो भवति । तस्मात्सदा विचारयेत्''

२ पैङ्गलो. उप.

अविचार से ही बन्ध होता है और सुविचार से मोक्ष होता है । इसलिए सदा आत्म विचार ही करना चाहिए ।

अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते... ।।१६।।

अज्ञान से ही संसार है और ज्ञान से ही जीव मुक्त होता है ।।

पाषाणलोहमणिमृण्मयविग्रहेषु पूजा पुनर्जननभोगकरी मुमुक्षोः ।
तस्माद्यतिः स्वहृदयार्चनमेव कुर्याब्दाह्यार्चनं परिहरेदपुनर्भवाय ।।

२/२६ मैत्रयी. उप.

पत्थर, सोना अथवा मिट्टी द्वारा बनाई मूर्तियों की पूजा मोक्ष की इच्छा वालों को फिर से जन्म और भोग प्राप्त कराने वाली होती है । इसलिए फिर से जन्म न लेना पड़े इस उद्येश्य से संन्यासी को ऐसी बाहरी पूजा को त्यागकर हृदय में ही आत्मा की पूजा करनी चाहिए ।।

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्त्वमानशुः ।

३, कैवल्य उप.

उस परमतत्त्व को धन, संतति अथवा कर्म के द्वारा भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है । त्याग ही एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा ब्रह्मज्ञानियों ने परम अमृतत्त्व को प्राप्त किया है ।

श्रीमद् भगवद् गीता

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।। ३/१७

देहाभिमानी अज्ञानी ही कर्म का अधिकारी है । अविद्या का नाश होने पर आत्मनिष्ठ ज्ञानी के द्वारा भेदभाव से सम्पन्न होने वाले यज्ञ, प्रार्थना, पूजा आदि कर्म सम्भव नहीं होते हैं । आत्मवेत्ता के लिये कोई भी लौकिक अथवा वैदिक कर्म करने का कर्तव्य नहीं रहता है । क्योंकि कर्म–उपासना द्वैत भाव द्वारा सम्पन्न होती है कि मैं इस यज्ञ, दान, पूजा पाठ, मंत्र, जप का कर्ता हूँ, मुझसे पृथक जो मेरा इष्ट है वह मुझे इसका फल प्रदान करेंगे । 'मैं दास हूँ', भगवान मेरे स्वामी है । जबकि ज्ञान अद्वैत चिन्तन से सम्पन्न होता है कि मैं ब्रह्म हूँ । इस प्रकार एक मन में दो प्रकार की विरोधात्मक वृत्ति नहीं हो सकती ।

अन्तुवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ।।

गीता ७/२३

पूजा, पाठ, यज्ञ, दान, तप, तीर्थाटनादि साधनों द्वारा जो भक्त अन्य देवताओं की उपासना करते हैं, वे मूढ़ हैं । अन्य देवताओं के भक्त अविवेकी और सकामी होते हैं । इसलिए **'अन्तवत्तु फलम् तेषाम्'**– उनका अन्य देवताओं से प्राप्त जो भी फल है वह विनाशी होता है ।

क्योंकि अखंड आत्मा से भिन्न अल्प में, द्वैत में, क्षुद्र में,नाशवान्, अल्प सामर्थ्य युक्त देवताओं में उनकी बुद्धि लगी हुई है, वे अल्प मेधा, वे बाह्य अर्थाभिलाषी होते हैं, अतः उनके फल भी अन्तवान् होते हैं । मूढ़ लोग विनाशी फल के लिये अन्य विनाशी देवताओं एवं उन नाश होने वाले लोक की कामना कर कर्म–उपासना करते हैं ।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालम् ।
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।।

गीता : ९/२१

और वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं ।

एवं त्रयी धर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ।। ९/२१

इस प्रकार वेद त्रयोक्त धर्म, काम्य, यज्ञादि को आप्रपन्न पुनः पुनः करने वाले, वेदान्त ज्ञान निष्ठ नहीं केवल कमेकान्डो, कामनाओं को चाहने वाले जन्म मरण को प्राप्त होते रहते हैं ।

प्लवा होते अद्दढा यज्ञ रूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ।
एतच्छे यो येऽमिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यान्ति ।।

– मुण्डक १/२/७

यज्ञ रूप नौका में १५ ऋत्विक् १६ वाँ यजमान, १७ यजमान की पत्नी तथा १८ वाँ उपद्रष्टा होता है । इस प्रकार यह यज्ञ रूप नौका जो १८ भेद वाली है जो अदृढ़ अर्थात् कर्मजोर है । इनके द्वारा संसार समुद्र से पार होना तो दूर रहा, इस मृत्यु लोक के वर्तमान दुःख रूप छोटी सी नदी पार होकर स्वर्ग तक पहुँचने में ही छिन्न भिन्न हो नष्ट हो जाती है । इसलिये ये अद्दढ़ अर्थात् अस्थिर है । इस रहस्य को न समझकर जो मुर्ख लोग इन सकाम कर्मो को ही बारम्बार कल्याण का उपाय समझकर इनके ही फल

को परम सुख मानकर इनकी प्रशंसा करते रहते हैं, उन्हें निःसन्देह बारम्बार वृद्धावस्था और मरण के दुःख को भोगना पड़ता है ।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।।

– गीता : ६/४४

जीव पूर्व जन्म में निरन्तर श्रद्धा, तितिक्षा, विवेक, वैराग्य, तथा मुमुक्षुता पूर्वक जो कर्म–उपासना करता है एवं दृढ़ ज्ञानोदय से पूर्व ही प्रारब्ध पूर्ण होने से यदि उसका देहनाश हो जाता है, तब यह योगभ्रष्ट संस्कारी जीव किसी भी परिस्थिति में जन्म लेकर वहाँ अपने पुण्य–कर्मों के फल भोग कर, पुनः पूर्वजन्म के योग साधनके संस्कार अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं एवं उसे न चाहने पर भी अपनी ओर खींच लेते हैं । जैसे लोहे के चूर्ण को चुम्बक अपनी ओर आकर्षित कर लेता है । जैसे राजा भर्तृहरि एवं गोतम को पूर्व जन्म के योग संस्कारों ने हठात् राज्य भोगों से खींचकर योग में लगा दिया । जड़ भरत योगी को हरिन में आसक्ति के कारण दो जन्म नष्ट होने पर भी पुनः मानव जीवन प्राप्त हो वह अपने ज्ञान के आगामी श्रेणी की ओर उन्मुख हो गया ।

जिज्ञासुः अपि योगस्य – योग के स्वरूप को जानने की इच्छावाला जिज्ञासु, मुमुक्षु, योगभ्रष्ट यति, ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हेतु पूर्व जन्मकृत पुरूषार्थ के सामर्थ से शब्दब्रह्म – अतिवर्तते – अर्थात् वेदों में कथित कर्मानुष्ठान का अतिक्रमण (उलंघन) करता है । ब्रह्मजिज्ञासा जागने पर मुमुक्षु शुभेच्छा नामक ज्ञान की प्रथम भूमिका का अधिकारी होता है । तब वह समस्त कर्मों का संन्यास करके वेदान्त श्रवण, मननादि ब्रह्मविद्या के उपायों में प्रयत्न करता है । ऐसी स्थिति में यदि वह मर जाये, तो उसका जन्म ज्ञानवान्, वैराग्यवान् ब्राह्मणों के घर में होता है । पूर्व जन्म के ज्ञान संस्कारों के बल से इस जन्म में कर्मकाण्ड

को त्याग कर ज्ञान के लिये प्रयत्न करता है। तात्पर्य यह है कि जिज्ञासु स्थिति में ही जब वह वैदिक कर्मकाण्ड को तिलाञ्जलि दे सकता है, तो ज्ञानयोग को प्राप्त ज्ञानी को कर्मकाण्ड त्यागने में उसे क्या कठिनाई हो सकती है ? कुछ नहीं । कर्म साधन मुक्ति प्राप्त कराने में सर्वथा असमर्थ है। मोक्ष का साधन तो साक्षात् आत्मज्ञान है। ज्ञान के संस्कार इतने बलवान् होते हैं, कि उसके सामने चक्रवर्ती राजाओं के भोग व इन्द्र पद को वह आत्मनिष्ठ ज्ञानी कुत्ते की तरह देखता है उसके सम्मुख कर्मकाण्डियों के वैदिक कर्म कुछ नहीं ठहरते। ज्ञानी हाथीवत् है, जगत् के अज्ञानी कुत्तेवत् चिल्लाने वाले हैं। हाथी अपने मार्ग में चला जाता है, कुत्ते उसके पीछे भौंकते रहने से वह नहीं रुकता। इसी प्रकार अज्ञानी कितना ही ज्ञानी का निन्दा करे किन्तु वह उलट जवाब नहीं देता ।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।। ६/३

फलेछा से रहित जो कर्मयोग है, वह ध्यानयोग का बहिरंग साधन है। ध्यान योग के शिखरपर चढ़ने की इच्छा रखने वाले मुनि, यानी कर्म फलत्यागी के लिये निष्काम कर्म, साधन कहा जाता है – चित्तशुद्धि द्वार से, तीव्र वैराग्य उत्पादन करके जो कर्मी ध्यान योग में आरूढ़ नहीं हुआ है परन्तु जिसका इच्छा ध्यान योग में स्थित होने की है उसे आरूरूक्षु आरोहण की इच्छा वाला कहते है। **योगारूढ़स्य तस्य** – और जब वह पूर्व में आरोहण की इच्छावाला कर्मी योगारूढ़ यानी ध्यान में स्थित हो जाता है एवं शमः कारणम् उच्तेः– 'एव' पदक्रम की भिन्नता बताने के लिये है। तब उसके लिये शम, उपशम सर्व कर्मों से निवृत्ति संन्यास ही ज्ञानोदय में साधन कहा गया है। क्योंकि कर्मों में लगा हुआ साधक अनन्य चित्तत्ता से योगानुष्ठान (सोऽहम्) चिन्तन नहीं कर सकता। कर्म एवं ज्ञान का सम समुच्चय भी नहीं हो सकता।

सम सम्मुच्चय – अर्थात् एक साथ कर्म, उपासना एवं ज्ञान का साधन करना ।

क्रम सम्मुच्चय – विद्यार्थी के कक्षाक्रमानुसार अर्थात् दोष के अनुरूप ही साधन करना जैसे अज्ञान दोष के लिये आत्म ज्ञान का ही सेवन करना ।

श्रीमद् भागवत

कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते ।
अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ।।

६/१/११

वस्तुतः कर्म के द्वारा ही कर्म की निर्बीजता अर्थात् पूर्ण नाश नहीं होता, क्योंकि कर्म का अधिकारी अज्ञानी है । अज्ञान रहते पाप वासनाएँ सर्वथा नहीं मिट पाती है, इसलिए सच्चा प्रायश्चित्त तो तत्त्वज्ञान द्वारा ही होता है ।

सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ।।

१२/१३/१२

आप लोग जानते है कि समस्त उपनिषदों का सार ब्रह्म और आत्मा का एकत्व रूप है । अद्वितीय वस्तु सच्चिदानन्द निर्गुण निराकार ब्रह्मात्मा ही श्रीमद्भागवत् का प्रतिपाद्य विषय है । उसके निर्माण का प्रयोजन एक मात्र कैवल्य मोक्ष ही है ।

'अहं ब्रह्म परमधाम ब्रह्माऽहं परम पदम्'

भागवत्

केचिद् यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान् यमान ।
आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ।
दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः ।।

११/१४/११

कर्मयोगी लोग यज्ञ, तप, दान, व्रत, तथा यम – नियम आदि को पुरुषार्थ बतलाते हैं, परन्तु यह सभी कर्म है। इनके फल स्वरूप जो लोक मिलते हैं वे उत्पत्ति और नाशवाले हैं। कर्मों का फल समाप्त हो जाने पर उनसे दुःख ही मिलता है और सच पूछो तो उनकी अन्तिम गति घोर अज्ञान (दुःख) ही है। सकाम कर्मों के द्वारा जो लोक एवं फल मिलता है वह तुच्छ है एवं वे लोक भोग के समय भी ईर्षा, मद, मात्सर्य, असुया आदि दोषों के कारण शोक पूर्ण ही है। इसलिए मुमुक्षु को इन विभिन्न भेदोपासना के जाल में नहीं फँसना चाहिये।

समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम्।
असंयतं यस्य मनो विनश्यद् दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ।।

११/ २३/४७

जिसका मन दान, स्वधर्म पालन, यम नियम , वेदाध्ययन सत्कर्म और ब्रह्मचर्यादि श्रेष्ठ व्रत में लगा हैं, इन सबका अन्तिम फल मनको एकाग्रता एवं आत्म जिज्ञासा का उदय हो जाना है। इसके बाद अब उन कर्म–उपासना से जिज्ञासु साधक को कुछ मिलने वाला नहीं है। उसे तो उन कर्मों का त्याग ही कर्तव्य है। यदि मन शांत नहीं हुआ, आत्म जिज्ञासा नहीं हुई तो उसके दानादि कर्म करने का क्या लाभ ? अर्थात् कोई लाभ नहीं हुआ। जैसे शास्त्र पढने से ब्रह्म जिज्ञासा उदय नहीं हो पायी तो शास्त्र पठन व्यर्थ है। यदि ब्रह्म जिज्ञासा उदय हो गई तो फिर शास्त्र पढने की क्या जरूरत ? कुछ भी नहीं।

भागवत में मूर्ति पूजा का निषेध

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ।।

३ /२९/२१

मैं आत्मा रूप से सदा सभी जीवों में स्थित हूँ। इसलिये जो लोग मुझ सर्व भूतमय परमात्मा का अनादर करके केवल जड़ प्रतिमा में ही मेरा पूजन करते हैं, वह पूजा उनके द्वारा मात्र ढ़ोंग दिखावा है ।

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजने मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ।।

३ /२९/ २२

मैं सबका आत्मा परमेश्वर सभी भूतों में स्थित हूँ, ऐसी दशा में जो मोहवश जीवित प्राणी के शरीर की उपेक्षा, हत्या करके केवल प्रतिमा के ही पूजन में लगा रहता है, वह तो मानो भस्म में हवन करता है ।

स्वंलोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः ।
आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ।।

४ /२९ /४८

जो मलिन बुद्धिवाले कर्मवादी लोग हैं वे वेद को कर्म परक ही बतलाते हैं, वे वास्तव में उसका मर्म नहीं जानते । इसका कारण यही है कि वे अपने भूतलोक में स्थित आत्मतत्त्व को नहीं जानते जो साक्षात् जनार्दन भगवान विराजमान् है ।

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।
न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ।।

५ /१२/१२

हे रहुगण ! महापुरुषों के चरणों की धूली से अपने को नहलाऐ बिना केवल तप, यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादि के दान, अतिथि सेवा, दीन जनोंकी सेवा आदि गृहस्थोचित धर्मानुष्ठान, वेदाध्ययन अथवा जल, अग्नि या सूर्य की उपासना आदि किसी भी साधन से यह महान परमात्म ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ।

किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ।
दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रव्हपादार्चनादिकम् ।।

१०/८४ /१०

जिन्होंने बहुत थोड़ी तपस्या की है और जो लोग अपने इष्ट देव को समस्त प्राणियों के हृदय में न देखकर केवल मूर्ति विशेष में ही उनका दर्शन करते हैं, उन्हें आपलोगों (साधु महात्मा) के दर्शन स्पर्श, कुशल प्रश्न प्रणाम और पाद पूजनादि का सुअवसर भला कब मिल सकता है ?

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ।।

–१०/८४ /११

केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते और केवल मिट्टी या पत्थर आदि धातुओं की प्रतिमाएँ ही देवता नहीं हो सकती । संत पुरुष ही वास्तव में तीर्थ और देवता है, क्योंकि जलमय तीर्थ को बहुत समय तक सेवन किया जाय तब वे शास्त्रानुसार पवित्र करते हैं, परन्तु संत पुरुष तो दर्शन मात्र से कृतार्थ करते हैं ।

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं स्वं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं विपश्चितो घ्नन्तिमुहूर्तसेवया ।।

–१०/८४ /१२

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, तारें, जल, आकाश, वायु, वाणी और मन के अधिष्ठातृ देवता की उपासना करने पर भी पाप का पूरा पूरा नाश नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी उपासना से भेद बुद्धि का नाश नहीं होता बल्कि मैं कर्म उपासना का कर्ता हूँ एवं मेरा इष्ट देव प्रसन्न हो फल प्रदान करेगा । इस प्रकार उपासना द्वारा भेद बुद्धि और दृढीभूत होती रहती है । परन्तु वह जिज्ञासु यदि किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ संत ज्ञानी महापुरुषों की सेवा में लगे तो उसके दैहिक, दैविक तथा भौतिक त्रितापों का तत्काल नाश हो जाता हैं, क्योंकि महापुरुषों द्वारा उदघोष किये गये महावाक्य भेदबुद्धि नाशक है ।

यस्यात्मबुद्धिः कृणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थ बुद्धिः सलिले न कर्हिचि ज्ञनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ।।

–१०/८४ /१३

श्रीकृष्ण यज्ञ में कहते हैं–हे महात्माओं और सभासदों ! जो मनुष्य वात, पित्त और कफ इन तीन धातुओं से बने हुए शव तुल्य शरीर को ही अपना रूप, स्त्री, पुत्रादि को ही अपनी आत्मा तथा मिट्टी, पत्थर, काष्ट, पीतल, स्वर्णादि धातु विकारों को ही अपना इष्टदेव मानता है, तथा जो केवल जल को ही तीर्थ समझता है परन्तु ज्ञानी महापुरुषों को नहीं मानता है वह मनुष्य होने से भी पशुओं में नीच गधा ही है । क्योंकि संत तो प्रत्यक्ष कल्याणकारी चैतन्य तीर्थ है ।

मुद मंगलमय संत समाजु । जो जग जंगम तीर थराजु ।।

तपस्तीर्थ जपो दानं पवित्राणीतराणि च ।
नालं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ।।

–११/१६ /४

सद्गुरु कृपा से तत्त्वज्ञान के लेश मात्र उदय होने से जो सिद्धि, शान्ति प्राप्त होती है, वह तपस्या, तीर्थ, जप, दान अथवा अन्तःकरण शुद्धि के अनेक प्रकार के कर्म उपासना योगादि साधन द्वारा भी पूर्णतया नहीं हो सकती ।

निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृतं मत्परस्त्यजेत् ।
जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत कर्मचोदनाम् ।।

–११/१० /४

जो पुरुष आत्म जिज्ञासु है, उसे अन्तर्मुख करने वाले वेदान्त तत्त्व का ही श्रवण, मनन करना चाहिये । उन कर्मों का बिल्कुल परित्याग कर देना चाहिये, जो जिज्ञासु में अपने एवं ब्रह्म के प्रति भेद बुद्धि करने वाले हैं, अथवा जो सकाम कर्म हो । जब आत्म सम्बन्धी उत्कट इच्छा जाग्रत हो जावे तो कर्म सम्बन्धी समस्त वेदोक्त विधि विधानों का आदर न करते हुए केवल सद्गुरु की शरण में जाकर वेदान्त तत्त्व का ही श्रवण, मननादि साधन करना चाहिये ।

श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निः श्रेयस परम् ।
सुखं तराति दुष्पारं ज्ञान नोव्यसनार्णवम् ।।

४ – २४ – ७५

इस लोक के सब प्रकार के सकाम, निष्काम, कर्म, उपासना आदि साधनों में मोक्ष दायक ज्ञान ही सर्व श्रेष्ठ है । ज्ञान नौका पर चढ़ा हुआ पुरुष अनायास ही इस दुस्तर संसार को पार कर लेता है ।

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ।
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता ।।

१० – १४ – २७

भगवन ! कितने आश्चर्य की बात है कि आप, सबके अपने आत्मा स्वरूप ही हैं । किन्तु लोग आपको पराया मानते हैं । और शरीर इन्द्रिय मनादि पराये दृश्य हैं, फिरभी उनको आत्मा मान बैठते हैं । और इसके बाद आपको कर्म–उपासना आदि साधनों द्वारा तीर्थ, मन्दिर, स्वार्गादि लोको में ढूंढने लगते हैं । भला अज्ञानी जीवों का यह कितना बड़ा अज्ञान है ।

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ।
उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ।।

१०-२८-१३

इस संसार में जीव अज्ञान वश शरीर में आत्म बुद्धि करके भांति भांति की कामना और पूर्ति हेतु नाना प्रकार के कर्म, उपासना करता है । फिर उनके फल स्वरूप, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष पाषाणादि ऊँच-नींच योनियों में भटकता फिरता है परन्तु अपनी असली गति को, आत्म स्वरूप को नहीं पहचान पाता है ।

ये माम् भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रत चर्यया ।
कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ।।

१०-६०-५२

प्रिये ! मैं मोक्ष का स्वमी हूँ । लोगों को संसार सागर से पार करता हूँ । जो सकाम पुरुष अनेक प्रकार के व्रत और तपस्या, पूजा, जप तीर्थादि करके जीवन में विषय सुख की अभिलाषा से भजन करते हैं वे मेरी माया से मोहित हैं । विषय जन्य सुख तो कूकर-सूकर योनियों में भी प्राप्त हो सकते हैं । वे मन्द भागी हैं । इसलिए वे आत्म ज्ञान, पराभक्ति नहीं चाहते हैं ।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ।।

१२-१०-२३

मार्कण्डेयजी ! केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं होते हैं तथा केवल जड़मूर्तियाँ ही देवता नहीं होते हैं । सबसे बड़े तीर्थ और देवता तो तुम्हारे जैसे सच्चे ब्रह्मज्ञानी संत हैं । क्योंकि संतो के दर्शन तथा श्रवण मात्र से ही जीव समस्त पाप, ताप, सन्तापों से मुक्त हो जाता है । परन्तु वे तीर्थ और देवता तो बहुत दिनों में भक्तों की श्रद्धा, भक्ति के अनुसार पवित्र करते हैं ।

मुद मंगलमय सन्त समाजू ।
जो जग जंगम तीरथ राजू ।। रामायण

वेद भी परमात्मा का परोक्ष रूप से वर्णन करते हैं अर्थात् जिनके शब्दार्थ–लक्ष्यार्थ कुछ और ही है, जिन्हें लक्षणा द्वारा ही जाना जा सकता है, जैसे 'तत्त्वमसि' । सद्गुरु से प्राप्त ज्ञान जीव को तत्काल मोक्ष दिलादेता है, जिसे सद्य मोक्ष कहते हैं, अर्थात् वह ज्ञान उसी समय हीअ

मोक्ष का अनुभूति करादेता है ।

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितभीश्वरे ।
नैष्कर्म्यों लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ।।

११–३–४६

वेदों में स्वर्गादि फल का निरुपण है। वह उनके सत्यता नित्यता में नहीं है, यह तो मूढ़ अज्ञानियों को कर्मों में रुचि उत्पन्न कराने, उन्हें नरकादि अधोगति से बचाने एवं कर्म से वैराग्य दिलाकर नित्य ज्ञान की प्राप्ति में श्रद्धा जगाने हेतु है ।

उपनिषद

तीर्थाणिं तोय पूर्णाणि देवान्पाषाण मृणायान् ।
ज्ञानिनो न प्रपद्यन्ते आत्म ध्यान परायण ।।

३–५२ जावाल उप

सभी तीर्थ जल प्रवाह नदी अथवा पाषाण निर्मित देवमूर्ति के लिये प्रसिद्ध है किन्तु आत्म ध्यान परायण ज्ञानी अज्ञानियों की तरह, इधर उधर नहीं भटकते हैं ।

तीर्थानी तोय पूर्णानि देवाः पाषाण मृण्यान् ।
आत्मस्थ ये न पश्यति ते न पश्यति तत्परम ।

१–२६ स्कन्दपुराण

तीर्थ जल से एवं देव मूर्ति पाषाण से हैं किन्तु जिसने अपने शरीर में हृदयेश्वर आत्मा को नहीं जाना वह अज्ञानी परमेश्वर को कभी नहीं जान सकता ।

जाबाल दर्शनोपनिषद्

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
नैवास्ति किञ्चित् कर्तव्यंस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ।।

१–२४

जिस जिज्ञासु ने सद्गुरु उपेदश द्वारा देह संघात् से भिन्न मैं द्रष्टा साक्षी, असंग, अखंण्ड, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानन्द, आत्म ब्रह्म हूँ,

इस प्रकार के निश्चय रूप ज्ञान अमृत का पान कर लिया है, वह अब कृतकृत्य हो चुका है । उसके मुक्ति में किंचित् भी कर्तव्य कर्म बाकी नहीं है । यदि वह अपने मुक्ति के लिये फिर भी साधन करना कर्तव्य मानता है तो उसे आत्मनिष्ठ नहीं जानना चाहिये । आत्मज्ञानियों के लिये तीनों लोकों में किसी प्रकार का वेदोक्त कर्म, उपासना, कर्तव्य रूप नहीं है । देहनिर्वाह संबन्धी क्रियाएँ तो प्रारब्धानुसार ज्ञानी–अज्ञानी सभी के द्वारा देह पर्यन्त होती ही रहती है, उन्हें वेद कर्म की संज्ञा में स्वीकार भी नहीं करता है ।

जो अपने भीतर रहने वाले साक्षी आत्म तीर्थ का परित्याग कर बाह्य तीर्थों, मन्दिरों, नदी, पर्वतों एवं मूर्तियों में ही भटकता फिरता रहता है वह हाथ में रखे हुए बहु मूल्य रत्न को त्याग कर काँच खोजता फिरता है । ४–५०

योगी पुरुष अपने चैतन्य आत्म तीर्थ में अधिक श्रद्धा विश्वास करने के कारण जल से भरे तीर्थों और काष्ठ पाषाणादि से निर्मित देवप्रतिमाओं की उपासना नहीं करते हैं । बाह्यतीर्थ की अपेक्षा आन्तरिक तीर्थ श्रेष्ठ है । आत्म तीर्थ ही महातीर्थ है । आत्मज्ञान के समक्ष अन्य तीर्थ निरर्थक है । शरीर में रहने वाला दूषित चित्त बाह्य तीर्थों में गोता लगाने से, भटकने से, स्नानादि क्रिया करने से पवित्र नहीं होता । जैसे मदिरा (शराब) से भरा घड़ा या मल से भरा हुआ घड़ा सैकड़ों बार गंगा में धो लिया जावे तो भी वह पवित्र नहीं होता । ४–५१–५६

जो ज्ञान रूपी जल से अज्ञान रूपी मल को धो डालता है वही सर्वदा शुद्ध है, दूसरा नहीं । जो बाह्य कर्म, उपासना, तीर्थादि में फंसा हुआ है, वह मनुष्य मूढ़तावश ज्ञान की अवहेलना करता है । ५–१४

शिव स्वरूप कल्याणात्मा इस शरीर में ही विद्यमान है । इनको न जानने वाला मूढ़ मनुष्य तीर्थ, दान, जप, यज्ञ, काठ और पत्थर में ही

परमात्मा खोजता है, अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक अपने शिव स्वरूप आत्मा को बाहर ढूँढ़ा करता है। ४–५७

जो अपने भीतर स्वयं प्रकाश, सर्व द्रष्टा, साक्षी, चैतन्य, नित्य रहने वाले आत्मा की उपेक्षा करके केवल बाह्य स्थूल पाषाण काष्ठ धातु आदि मूर्तियों की ही उपासना करता है वह हाथ में रखे हुए अन्न के ग्रास को फेंककर केवल अपनी कोहनी चाटता है। योगी पुरुष अपने आत्मा को ही शिव स्वरूप जानते हैं, प्रतिमाओं को नहीं। अज्ञानी मनुष्यों के हृदय में भगवान के प्रति भावना जाग्रत करने के लिये ही प्रतिमाओं की कल्पना की गयी है। ४–५८–५९

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवा ।
तदा देवमाविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ।।

श्वेता. उप. ६–२३

जिस प्रकार आकाश को चमड़े की तरह लपेटना मनुष्य के लिये सर्वथा असम्भव है। यदि कोई ऐसा कर सकेंगे तभी वे बिना आत्मा के जाने समस्त दुःख समुदाय को पार कर सकेंगे। तात्पर्य यह है कि बिना आत्म ज्ञान के बाह्य सभी कर्म, उपासना को करलेने से भी जीव मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

अस्तु परमानन्द की प्राप्ति हेतु अन्य सभी बहिरंग साधनों से मन को हटाकर एकमात्र आत्मा को जानने के लिये सद्गुरु की शरण ग्रहण कर मुक्ति प्राप्त करने की जिज्ञासा एवं चेष्टा करना चाहिये।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

श्वेता. उप. ३–८

जो आत्मदेव समस्त दृश्य वर्ग का प्रकाशक, असंग, निर्विकार हृदय का साक्षी हुआ सब प्राणीमात्र में विद्यमान है, उसे ही सद्गुरु कृपा द्वारा सोऽहम् रूप जानने से ही जीव जन्म–मृत्यु के बन्धन से सदा के लिये छूट सकता है। परमात्म प्राप्ति के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है।

परीक्ष्य लोकान्कर्म चितान्ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नस्त्यकृतः कृतेन ।

१–२–१२ मुण्डकोपनिषद्

अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य को पहले बताये हुए सकाम कर्मों के फल स्वरूप, इस लोक और परलोक के समस्त कर्म द्वारा प्राप्त सुखों की, पदार्थों की भलीभाँति परीक्षा करके अर्थात् विवेक पूर्वक उनकी अनित्यता और दुःख रूपता को समझकर सब प्रकार के कर्म, उपासना एवं उनसे प्राप्त लोक एवं भोगों से विरक्त हो जाना चाहिये ।

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।

मुण्डको. १–२–१२

अतः जो सर्वथा किसी भी प्रकार की क्रिया साधनादि द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है उस परमेश्वर की प्राप्ति के लिये जिज्ञासु को किसी वास्तविक तत्त्वज्ञान प्राप्त श्रोत्रिय–ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु की शरण में श्रद्धा एवं समिधा लेकर जाना चाहिये ।

श्रोत्रियम् –वेदोक्त कर्म–उपासना साधन के तात्पर्य को भली प्रकार जानने वाले ।

ब्रह्मनिष्ठम् – परब्रह्म परमात्मा में सोऽहम् निष्ठा करके स्थित ।

जानाम्यहँ शेवधिरित्यनित्यं न ह्यघ्रबैः
प्राप्यते ही ध्रुवं तत ।।

१–२–१० कठोप.

मैं इस बात को भली भाँति जानता हूँ कि कर्मों के फल स्वरूप जो लोक एवं परलोक के भोग समुह की निधि मिलती है, वह चाहे कितनी ही महान् क्यों न हो, एक दिन उसका विनाश निश्चित है । और यह सिद्धान्त है कि अनित्य कर्मोंपासनादि साधनों द्वारा नित्यात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

एष मध्ये बुमुत्सूनां यदा तिष्ठेत्तदा पुनः ।
बोधायैवां क्रियाः सर्वा दूषयंस्त्यजतु स्वय् ।।

– पंचदशी तृप्तीदीप ७–२८६

जब विद्वान्, अज्ञानी कर्मवानों के मध्य रहे तो उनसे कर्म कराये उन्हें रोके नहीं किन्तु जब वह ज्ञानी जिज्ञासुओं के मध्य रहे तब उन मुमुक्षुओं को दृढ ज्ञान कराने हेतु सभी भेद उपासना के गोपनीय दोष बतावे और उन भेद मूलक सभी क्रियाओं का स्वयं भी त्याग करे एवं त्याग करना सिखावे ।

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं ज्ञानानंद प्रयच्छाति ।
सप्त कोटि महामंत्र जन्म कोटि शत प्रदम् ।।

तेज. उप. अध्याय ३

मैं ब्रह्म हूँ यह एक ही मंत्र ज्ञानानन्द मोक्ष को देने वाला है । हे कुमार ! ऐसे तो सात करोड़ महामंत्र हैं पर वह सभी भेदोपासना के हेतु होने से सौ करोड़ जन्मों को दिलाने वाले हैं ।

मुक्तिस्तु ब्रह्मतत्त्वस्य ज्ञानादेव न चान्यथा ।

– पंचदशी ६ – २१०

मोक्ष की प्राप्ति ब्रह्मतत्त्व का आत्मा रूप से ज्ञान होने पर ही हो सकती है अन्य करोड़ों प्रकार के कर्म, उपासनादि साधनों द्वारा कदापि नहीं हो सकती ।

स्वप्रबोधं बिना नैव स्वस्वप्नो हीयते यथा ।

६–२१०

जैसे बिना अपने जाग्रत हुए निद्रा कालीन समस्त चिंता शोक दुःख से छुटकारा पाने के लिये अन्य कोई उपाय नहीं । इसी प्रकार बिना 'शिवोऽहम्' ज्ञान के अपना संसार बन्धन भ्रम दूर नहीं हो सकता ।

यावानर्थ उपादाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्यर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानत ।।

– गीता ३ – ४६

जीवन निर्वाह के लिये पानी की इच्छावाले मनुष्य को जैसे विशाल स्वच्छ जलाशय के प्राप्त हो जाने पर फिर उस मनुष्य का समस्त छोटे छोटे जलाशयों में प्रयोजन नहीं रहजाता है । क्योंकि विभिन्न स्थानों पर जाकर जल से जो विभिन्न क्रिया का लाभ लेता था, अब उसे एक ही स्थान पर सभी उपयोग हेतु जल प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार सब वेदों में कर्मों के जो नाना फल कहा है, उन सबका ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार करने वाले ब्राह्मण को स्वतः मिल जाते हैं ।

तात्पर्य यह है कि वेद के कर्मकाण्ड विभाग में कामना पूर्ति के लिये जितने यज्ञ विधान बतलाये हैं, उनके करने से अमुक–अमुक कामना की पूर्ति होती है, परन्तु वासनायें तो अनेक हैं । कहाँ तक वैदिक कर्म करेगा ? कर्म आनन्दार्थ किये जाते हैं । ज्ञान होने पर समस्त कर्मकाण्ड का फल अनायास ही ब्रह्मानन्दनुभूति द्वारा प्राप्त हो जावेगा । कर्म का उपयोग तो मात्र चित्त शुद्धि के लिये ही है । चित्त शुद्धि होने पर ज्ञानाधिकारी हो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

केवल कर्म करने वाला, ज्ञान के प्रति अश्रद्धा करने वाला कर्म फल से जन्म–जन्मान्तर को प्राप्त होता रहता है ।

कुरुते गंगा सागर गमनं व्रतपरिपालनऽथवा दानम् ।
ज्ञान विहीन सर्वं तेन मुक्ति न भवति जन्म शतेन् ।।

मोह मुद्गर शंकराचार्य

यत कर्म तत् बन्धाय

जो भी कर्म है सब बन्धन स्वरूप है ।

मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ।।

– कठोप २ – १ – ११

जो जीव परमात्मा व अपने में भेद रखकर कर्म–उपासना आदि साधन करता है, वह जन्म–मरण के चक्र में ही सदा फंसा रहता है ।

नाना शास्त्र पठेन्लोके नानादेवत् पूजनम् ।
आत्म ज्ञान बिना पार्थ सर्व कर्म निरर्थकम् ।।

– शिव संहिता

जो साधक नाना शास्त्र, पुराणों को पढ़ता है एवं तदानुसार नाना देवताओं की अपनी कामनानुसार उपासना करता रहता है किन्तु आत्म ज्ञान बिना वह अपने समस्त दुःखों से छूट परमात्मा की प्राप्ति कभी नहीं कर सकेगा । कर्म–उपासना तो केवल जीव के अन्तःकरण शुद्धि हेतु है न कि मोक्ष का साधन है । मोक्ष प्राप्ति हेतु कर्म–उपासना उपयोगी नहीं है ।

आत्मस्थं यं शिवं त्यकता बहिर्रभ्य च येन्नरः ।
हस्तस्थं फल त्सृज्य लियेत् कुर्परात्मनः ।।

– शिव पुराण १८–१०१, जाबाल उप. ४ – ५६

जो मुमुक्षु अपने हृदय स्थित शिव स्वरूप आत्मा को मैं रूप न जानकर बाह्य तीर्थों में भ्रमण करता रहता है, वह साधक ऐसा मूर्ख है जो हाथ में रखे लड्डू को फेंककर अपनी कोहनी चाटकर भूख निवृत्त करना चाहता है ।

अज्ञान सर्पदृष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं बिना ।
किमु वैदैश्च शास्त्रौश्च किमु मन्त्रैः किमौषधैः ।।

– विवेक. चूड़ा ६३

अज्ञान रूपी सर्प से डँसे हुए को ब्रह्मज्ञान रूपी औषधि के बिना वेद, शास्त्र, मन्त्र और औषधियों से क्या लाभ ? अर्थात् सब साधन ज्ञान के अलावा निरर्थक ही है ।

न मुक्ति जपनाद्धोमात् उपवास शतेरपि ।
ब्रह्मवाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहमृत ।।

– महानिर्वाण तंत्र १४–११६

जप, उपवास, होम आदि सैकड़ों कर्म करने पर भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती । जब तक की सद्गुरु द्वारा ''वह ब्रह्म मैं हूँ'' ऐसा शुद्ध ज्ञानोदय नहीं होता है, तब तक जीव किसी भी अन्य साधन द्वारा मुक्त नहीं हो सकता ।

लब्धेह मानुषी योनि ज्ञान विज्ञान सम्भवाम ।
आत्मानं य न बुध्यते न क्वचित् क्षेम मापुन्या ।।

– भागवत् ६ – १६ – ५८

देव दुर्लभ मनुष्य योनि में ही ज्ञान विज्ञान संभव होता है । जो इस देह को पाकर भी आत्म ज्ञान की चेष्टा नहीं करते उनका मंगल नहीं है, वे नराधम ही है । उसे आत्म हत्यारा कहा जाता है ।

जो न तरे भवसागर नर समाज अस पाय ।
सो कृत निन्दक मंदमति आतमहन गतिजाय ।।

–रामायण

श्रवणं मननं ध्यानं ज्ञानान्चैव साधनम् ।
यज्ञ दान तपस्तीर्थ वेदैमुक्तिर्न लभ्यते ।।

– गरुड़ पुराण

मुक्ति हेतु वेदान्त तत्त्व का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन साधन है । यज्ञ, तप, दान, तीर्थ, वेदपाठ द्वारा मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

उपेक्ष्य तत्तीर्थ यात्रा जपादीनेव कुर्वताम् ।
पिण्डं समुत्सृज्य करं लेढ़ोति न्याय आपतेत ।।

– पंचदशी ६ – १२७ ध्यानदीप

निराकार आत्मचिन्तन छोड़कर तीर्थ यात्रा, जप, दान, पाठ, पूजादि में लगे हुए लोगों की अवस्था तो वही है जो हाथ में आये हुए कोर को छोड़कर कुहनी चाटने वाले पुरुष की होती है ।

इदं तीर्थ इदं तीर्थ भ्रमन्ति तामसा जना : ।
आत्मतीर्थ न जानन्ति कथं मुक्ति बरानने ।।

– कपिल गीता, ज्ञान संकलनी तंत्र ४६

इस तीर्थ उस तीर्थ में देहाभिमानी तमोगुण प्रकृति के अधम जीव ही भटकते फिरते हैं । किन्तु जब तक आत्मतीर्थ से अवगत नहीं है, तब तक मुक्ति की आशा कहाँ ?

अग्निर्देवो द्विजातीनां हृदि दैवतम् ।
प्रतिमा स्वल्प बुद्धिनां सर्वत्र समदर्शिनाम् ।।

– उत्तर गीता ३ – ७

ब्राह्मणों के लिये अग्नि ही देवता है । उपासको के लिये हृदय में ध्यान करना, मंद बुद्धि वालों के लिये प्रतिमा तथा ज्ञानी के लिये सर्वत्र ब्रह्म दर्शन होता रहता है ।

उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यान भावस्तु मध्यमः ।
स्तुति जपोऽधमो भावो बहीः पूजा धमा धम।।

– महानिर्वाण तंत्र १ द्व–१२२

ब्रह्म चिन्तन करना सर्वोत्तम साधन है, ध्यान करना मध्यम साधन है तथा स्तुति, जप करना अधम साधन है तथा मूर्तिपूजा करना तो मन्दबुद्धि वालों के लिये अधम से अधम साधन है ।

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया तु प्रमुच्यते ।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ।।

– गरुड़ पुराण. २४१–११

जीव को कर्म बन्धन रूप है ज्ञान ही मुक्ति प्रदायक है । इसलिए तत्त्वज्ञानी कर्म का आदर नहीं करते हैं !

सर्वस्यैव जनस्यास्य विष्णुरम्यन्तरे स्थितः ।
तं परित्यज्य ये यान्ति बहि बिष्णु नराधम। ।।
हृदगुहावासि चित तत्त्वं मुख्यं सनातन वपुः ।
शंख चक्र गदा हस्तौ गौण आकार आत्मन ।।
योहि मुख्यं परित्यज्य गौणं समनुधावति ।
त्यक्त्वा रसायनं सिद्ध साध्यं संसा धयत्य सौ ।।

– उपशम प्रकरण, योग वशिष्ठ. ५–४३–२६–२८

समस्त प्राणियों के हृदय में विष्णु स्थित है, उनका वहाँ से तिरस्कार करके जो उन्हें बाहर ढूंढता है, वह नराधम है । हृदय में जो चैतन्य द्रष्टा, साक्षी, आत्मा विद्यमान है वही परमात्मा का वास्तविक स्वरूप है । शंख, चक्र,गदा, पद्म हाथ में लिये मूर्ति तो विष्णु का गौण रूप है । जो मुख्य साक्षी आत्म स्वरूप का परित्याग करके गौण आकार के पीछे दौड़ता है वह सिद्ध रसायन को त्यागकर उसे साधन द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा करता है ।

आत्मस्था देवता त्यक्त्वा बहिर्द्देव विचिन्त्यते ।
करस्थं कास्तुभं त्यक्त्वा भ्रमते काँच तृष्णया ।।

– ज्ञान संकलनी तंत्र २४६ – १– ३

जो साधक अपने हृदय स्थित आत्मदेव का त्याग कर अन्य कल्पित बाह्य मूर्तियों की उपासना करता है वह मूर्ख तो हाथ में रखे कौस्तुभ मणि का त्याग कर कांच को प्राप्त करने के लिये भटक रहा है ।

ब्रह्म ज्ञानाद्यते देवि कर्म सनम विना ।
कुर्वन कल्प शंत कर्म न भवेन्मुक्ति भाजनम् ।।

– महानिर्वाण तंत्र ८–२८८

हे पार्वती ! कर्म त्याग किये बिना ब्रह्मज्ञान लाभ नहीं होता है चाहे वह सैकड़ों कल्प तक कर्म क्यों नहीं करता रहे । मोक्ष का अभिलाषी कर्म द्वारा मुक्ति लाभ कभी नहीं कर सकेगा, क्योंकि ज्ञान के बिना मुक्ति कभी नहीं हो सकती, ऐसा वेद का कथन है । '**ज्ञानादेव तु कैवल्यम्**' । '**ऋतेः ज्ञानान्न मुक्तिः** ।'

संसारोत्तरणे जन्तोरूपायो ज्ञानमेवहि ।
तपोदानं तथा तीर्थमनु पायाः प्रकीत्तिताः ।।

– योगवाशिष्ठ २–१०–२२

संसार से पार होने हेतु जीव के लिये ज्ञान ही एकमात्र दृढ़ नौका है । दान, तपस्या, तीर्थ, स्नान इत्यादि इसके लिये एक भी स्वतंत्र उपाय नहीं माने जाते ।

उप समीपे यो वासो जीवात्म परमात्मनः ।
उपावासः स विज्ञेयो न तु कायत्व शोषणम् ।।
कायशोषण मात्रेण का त ह्यविवेकि नान् ।
बाल्मिक ताड़ना देव हतः किं नु महारोग ।।

– बराह. उप. २–३६–४०

जीवात्मा और परमात्मा का समीप में जो वास है याने सोऽहम् रूप से जो निश्चय किया जाता है, वही वास्तविक उपवास है । भूखे रहने, पत्र, फल, दूध जल खाने का नाम उपवास नहीं है । सर्प के गृह (बांबी) के ऊपर लाठी प्रहार करने से उसमें छुपा सर्प कभी नहीं मरता है इसी प्रकार सूक्ष्म देह में छुपा पापी मन स्थूल देह को सताने से कभी

निर्वासनिक नहीं होता है। अथवा तीर्थों में शरीर स्नान से शरीर में छुपा पापी मन शुद्ध नहीं होता ।

ज्ञान विमोक्षाय न च कर्म साधनम्

ज्ञान ही मुक्ति का साधन है अनित्य कर्मों द्वारा नित्य मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थ तीर्थ इन्द्रिय निग्रहः ।
सर्व भूत दया तीर्थ तीर्थमार्जव च ।।

सत्य, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह तथा मन, वचन, कर्म द्वारा किसी प्राणी की हिंसा न करना रूप शरीर एवं अन्तःकरण की सरलता ही वास्तविक तीर्थ है। जल पाषाण निर्मित स्थान तो मूर्खों के लिये तीर्थ है ।

इदं तीर्थं इदं तीर्थ भ्रमति तामसा जनः ।

अज्ञानी भेदमति वाले लोग ही इस तीर्थ से उस तीर्थ में भटक भटक गोते लगाते सर पीटते रहते हैं ।

न कर्मणा न प्रजया न धनेन न त्यागेनैके अमृतत्त्व मानशुः ।।

– कैवल्यो उप. १–२

कर्म, पुत्र, धनादि से मुक्ति लाभ नहीं होता है। मुक्ति की प्राप्ति तो देहाभिमान के त्यागने से ही होती है। चित्त का त्याग ही सर्व त्याग है।

मुक्ति र्नास्ति जटाजुटे न कायाये न मुण्डने ।
न भस्मनि न कन्थायां तिलके न कमञ्डले ।।

– बोधसार (शंकराचार्य)

मुक्ति न जटाजुट से, न कपड़े रंगने से, न मुण्डन, न भस्म, न कंठी, न तिलक, न कमण्डल के धारण करने से होगी। मुक्ति की प्राप्ति तो केवल सद्गुरु की शरण में जाकर वेदान्त ज्ञान, श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा ही हो सकेगी ।

अश्वमेध सहस्त्राणि वाजपेय शतानि च ।
ब्रह्मज्ञान समं पुण्यं कलां नार्हति षोडशीम ।।

– ज्ञान संकलिनी तंत्र ९०

अश्वमेध, वाजपेय यज्ञ सैकड़ों बार करलेने पर भी 'मैं ब्रह्म हूँ' इस एक क्षण के ज्ञान के पुण्य के समान, उस ज्ञान की १६ वी कला का पुण्य भी बराबरी नहीं हो सकता है ।

न मुक्ति र्जपनाद्धोमात् उपवास शतेरपि ।
ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहभृत ।।

– महानिर्वाण तंत्र १४–१०६

जप, होम, उपवासादि द्वारा कभी मुक्ति लाभ नहीं होता है, वह तो सद्गुरु द्वारा ''मैं वही ब्रह्म हूँ'' इस प्रकार सोऽहम् निश्चय द्वारा ही होता है ।

अज्ञानी को कर्म श्रेष्ठ है । क्योंकि सकाम कर्म करने से वे अधोगति से तो बच सकेंगे । अवश्य ही तप, दान करने से स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती है किन्तु वे अज्ञानी पाप कर्म से बचकर वेदोक्त सकाम कर्म करेंगे तो नरक से बच स्वर्ग भोग के अधिकारी तो बन सकेंगे ।

जैसे कम्बल से रेशम का वस्त्र श्रेष्ठ है, परन्तु यदि रेशम वस्त्र न मिले तो कम्बल ही भला है । उसी प्रकार ज्ञान रेशम की तरह एवं कर्म कम्बल की तरह है । कर्म से शान्ति नहीं मिलती है । अज्ञानी को कर्म ही प्रिय होता है ।

– चिन्तामणि वृतान्त निर्वाण प्रकरण. योगवाशिष्ठ ३६ संर्ग

योग एवं ज्ञान संसार से तरने के दोनों उपाय है । इन दोनों में 'योग' प्राण के रोकने का नाम है तथा सर्वत्र सम देखना 'ज्ञान' है । किसी को योग करना कठिन होता है और किसीको ज्ञान का निश्चय सुगम होता है । बुद्धि की मन्दता वाले भाव प्रधान साधक को ज्ञान का निश्चय कठिन लगता है, और ब्रह्मचर्य तथा स्वस्थ व्यक्ति को योग

करना सुगम है । हे राम ! यदि मुझसे पूछो तो दोनों में ज्ञान सुगम है क्योंकि इसमें यत्न और कष्ट थोड़ा भी नहीं है । एक बार भली प्रकार जानने योग्य पदार्थ को जानलेने के बाद स्वप्न में भी भ्रम नहीं होता ।

– ज्ञानज्ञेय प्रकरण योग वा. १२ सर्ग

अपना स्वभाव ज्ञान मात्र है, उसी के जानने का नाम ज्ञान है । हे रामजी ! ज्ञान बिना जो तप, यज्ञ, दान, आदिक क्रिया है सो सब व्यर्थ है । सब क्रियाओं की सिद्धि ज्ञान से होती है । हे रामजी ! जो कुछ क्रिया ज्ञान के निमित्त कीजिये सोही पुरुषार्थ श्रेष्ठ है, इससे अन्यथा व्यर्थ है ।

विद्यमान देव जो साक्षी आत्मा है वही विष्णु है, उसको त्याग कर जो और देव का पूजन करते हैं, उनकी पूजा सफल नहीं होती है और विष्णु उनपर कोपमान भी होते हें । इसी तरह आत्मा जो अनुभव स्वरूप विद्यमान है उसको त्याग कर जो औरों का पूजन करते हैं, वे जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त नहीं होते हैं । इस आत्म देव की पूजा ही सच्ची विष्णु पूजा है । इसे छोड़ जो सूर्य, चन्द्रमा आदिक भेद पूजा है सो तुच्छ है । – योगवशिष्ठ १६२ सर्ग

जो साधक अकृत्रिम आत्म देव की पूजा नहीं कर सकता, उस अज्ञानी के लिये आकार पूजना भी भला है । जो जैसी भावना करता है उसे वैसा ही फल मिलता है । जो परिच्छिन्न साकार नाशवान पदार्थ की उपासना करता है उसे फल भी नाशवान् ही मिलता है । वह बालक्रीडावत् है ।

– योग. वा. २८ सर्ग

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ।।

– गीता : ७/२३

परन्तु उन अल्प बुद्धिवालों का वह फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजनेवाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजे, अन्तमें वे मुझको ही प्राप्त होते है ।

अध्यात्म रामायण

देहाभिमानिनः सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति हि ।।

– अयोध्या काण्ड ४ – ३२

इस देहाभिमान युक्त पुरुष में ही समस्त दोष प्रकट हुआ करते हैं । आत्माभिमान युक्त पुरुष को देहाभिमान न होने से वह पापों एवं पुण्यों से मुक्त रहता है ।

देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता ।
नाहं देहाश्चिदात्मेति बुध्दिर्विद्येति भण्यते ।।

–४– ३३

मैं यह अनात्म नाम, रूप वाला शरीर हूँ । मेरी यह जाति, आश्रम, धर्म है । इस प्रकार आत्मा में भ्रान्त धारणा करने वाली बुद्धि को ही अविद्या कहते हैं । तथा मैं द्रष्टा, साक्षी, असंग, निष्क्रिय आत्मा हूँ इस शुद्ध बुद्धि का नाम ही विद्या है ।

अविद्या संसृतेर्हेतुर्विद्या तस्या निवर्तिका ।
तस्माद्यत्नः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः ।।

– ४–३४

देहाभिमान, जातिअभिमान, आश्रमाभिमान, धर्माभिमान रूप अविद्या ही जीव को जन्म–मरण रूप संसार बन्धन देने वाला है तथा देह संघात् से भिन्न मैं द्रष्टा, साक्षी, असंग चैतन्यात्मा रूप विद्या समस्त

देह जाति, आश्रम, धर्म सम्बन्धी अभिमान का नाश करने वाली है । अतः मोक्षाभिलाषी जनों को समस्त कर्मों को बन्धन रूप जान उनका त्याग कर ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने हेतु सद्गुरु की शरण में जाने की ही चेष्टा करना चाहिये एवं उनसे प्राप्त ब्रह्मविद्या का ही दृढ़ता से श्रद्धा, भक्ति पूर्वक अनन्य भाव से अभ्यास करना चाहिये । मैं द्रष्टा, साक्षी, आत्मा, अखण्ड, नित्य, मुक्त, सच्चिदानन्द, स्वरूप हूँ । यह आत्मविद्या अविद्या जन्य समस्त संसार बन्धन व अभिमान की निवृत्ति करानेवाली है । अतः साधक को प्रयत्न पूर्वक अविद्या से निवृत्त होकर आत्मज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करना चाहिये ।

सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ।

– भगवत् गीता १८–४८

क्योंकि समस्त कर्म देहाभिमान एवं भेद बुद्धि द्वारा ही सम्पन्न होने से बन्धन रूप है । निष्क्रिय आत्मा में कर्ता भाव एवं अद्वितीय ब्रह्मसता में द्वैत भाव बिना लाये कोई भी शुभ या अशुभ कर्म आरम्भ नहीं होता है। जैसे अग्नि प्रकाश रूप होने पर भी धुवें से युक्त होकर ही प्रकट होती है, उसी प्रकार कोई भी कर्म बिना दोष के नहीं है । इसलिये –

आदौ स्व वर्णाश्रम वर्णिताः क्रियाः कृत्वा समासादित शुद्धमानसः ।
समाप्य तत्पूर्वमुपात्त साधनः समाश्रयेत्सद्गुरुमात्म लब्धये ॥

५–७ उत्तर कांड

मोक्ष अभिलाषी साधक को ज्ञानाधिकारी होने के लिये सर्व प्रथम अपने वर्ण, जाति, आश्रमोचित यथावत् निष्काम भाव द्वारा कर्म पालन कर चित्त शुद्ध हो जाने पर आत्म जिज्ञासा उदय होते ही सकाम–निष्काम कर्मों को छोड़ दे और विवेक, वैराग्य, शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धादि साधनों से युक्त होकर किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण में जाना चाहिये ।

क्रिया शरीरोद्भवेहतुरादृता प्रियाप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः ।
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः ।।

५–८ उत्तराकाण्ड

कर्म देहान्तर प्राप्ति के लिये ही स्वीकार किये गये हैं ; क्योंकि कर्म का कर्ता अपने से भिन्न कर्म फल दाता ईश्वर को तथा अपने को कर्ता मानता है तभी कर्म सम्पादन होता है । कर्म में श्रद्धा करने वाला कर्माधिकारी द्वारा शुभाशुभ दोनों प्रकार की ही क्रियाएँ होती है । उनसे उसे धर्म और अधर्म दोनों की ही प्राप्ति होती है । धर्म के फल स्वरूप वह उर्ध्वगति प्राप्तकर सुख भोग एवं अधर्म के फल स्वरूप अधोगति को प्राप्तकर दुःख भोग करता है । और इसलिये उसे ऊँच–नीचँ योनियों में जन्म ग्रहण करना पड़ता है । फिर वहाँ प्रारब्ध भोग के साथ नूतन क्रियमाण कर्म करता है । इसी प्रकार वह संसार चक्र में दिन–रात की तरह अनादि से दुःख को प्राप्त होता आ रहा है ।

अज्ञानमेवास्य हि मूल कारणं तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते ।
विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी न कर्म तज्जं साविरोधमीरितम् ।।

– ५–६ उत्तराकाण्ड

संसार का मूल कारण अज्ञान ही है । इस अज्ञान को सद्गुरु द्वारा तत्त्वमसि विधि वाक्यों से नाश करने से जीव भाव, कर्त्ता–भोक्ता भाव, बन्ध–भाव, पाप–पुण्य भाव रूप संसार बन्धन से मुक्त होजाता है । अन्धकार का नाश करने में जैसे प्रकाश समर्थ होता है उसी प्रकार अज्ञान का नाश ज्ञान द्वारा ही हो सकता है । अज्ञान से उत्पन्न होने वाले कर्म अपने उपादान कारण अज्ञान का नाश नहीं कर सकते ।

ना ज्ञानहानिर्न च रागसंक्षयो, भर्वेत्ततः कर्म सदोष मुद्भवेत ।
ततः पुनः संसृतिरप्य्य वारिता, तस्माद् बुधो ज्ञानाविचारवान्भवेत ।।

– ५–१० उत्तराकाण्ड

अज्ञान से कर्म का जन्म होता है। उन दोष युक्त सकाम कर्मों के द्वारा अज्ञान एवं उसके कार्य राग–द्वेष का नाश नहीं होता है ; बल्कि उनसे दूसरे सदोष कर्म की ही उत्पत्ती होती है। जिसके फल स्वरूप कर्म कर्ता को पुनः संसार की ही प्राप्ति अवश्य होती है, मुक्ति नहीं। इसलिये विवेकी जिज्ञासु को ज्ञान के यज्ञादि बहिरंग साधनों का त्याग कर वेदान्त श्रवण, मननादि अन्तरंग साधनों को ही श्रद्धा पूर्वक सेवन करना चाहिये।

देहाभिमानादिभिवर्धते क्रिया
विद्या गताहङ्कृतितः प्रसिद्ध्यति ।।

५–१४ उत्तराकाण्ड

कर्म, फल तथा कर्ता, यह भेद बुद्धि से ही होता है एवं भेद बुद्धि देहाभिमान से होती है; जबकि ज्ञान समस्त अहंकारों के नाश होने पर सिद्ध होता है। अर्थात् भेद बुद्धि से कर्म एवं अभेद बुद्धि अर्थात् सोऽहम् वृत्ति रूप ज्ञान का सम समुच्चय कभी नहीं हो सकता। कर्म में बुद्धि वृत्ति अनेक प्रकार के साधन सामग्री की चिंता में बहिर्मुख प्रवाहित होती रहती है एवं ज्ञान समस्त अनात्म वृत्ति का त्यागकर एक मात्र आत्मनिष्ठ हो अन्तर्मुखता को प्राप्त होती है। ५–१४ उत्तराकाण्ड.

तस्मात्यजेत्कार्यंम शेषतः सुधी र्विद्या विराधान्न समुच्चयो भवेत्।
आत्मानुसन्धान परायणः सदा निवृत्त सर्वेन्द्रिय वृत्ति गोचर ।।

–५–१६ उत्तराकाण्ड.

इसलिये समस्त इन्द्रियों के धर्मों के अहंकार का त्याग करके निरन्तर आत्मानुसन्धान में लगा हुआ बुद्धिमान पुरुष सम्पुर्ण भेदबुद्धि उत्पन्न करने वाले अज्ञान जनित कर्मों का सर्वथा त्याग करदे। क्योंकि विद्या की विरोध अविद्या होने के कारण कर्म का ज्ञान के साथ सम समुच्चय नहीं हो सकता।

यावच्छरीरादिषु माययात्मधी ,
स्तावद्विधेयो विधिवाद्कर्मणाम् ।
नेनीति वाक्यैरखिलं निषिद्यत ,
ज्ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत्क्रियाः ।।

–५–१७ उत्तराकाण्ड.

जब तक माया से मोहित रहने के कारण अज्ञानी का शरीर, जाति, आश्रमादि में 'मैं' भाव है तभी तक उसे वैदिक कर्मानुष्ठान कर्तव्य है । जिस परमानन्द सुख प्राप्ति हेतु वेदोक्त कर्म किये जाते थे सद्गुरु द्वारा 'यह भी नहीं', 'यह भी नहीं', 'नेति–नेति' आदि वाक्यों से सम्पूर्ण अनात्म वस्तु जन्य सुख को हटा दिया जाता है । यह ब्रह्मानन्द नहीं है । या इस कर्म साधना से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति नहीं होगी इस प्रकार जान लेने पर फिर उस साधक को समस्त कर्मों को छोड़ देना चाहिये एवं आत्मज्ञान का ही श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना चाहिये ।

सर्वेषु प्राणि जातेषु ह्यहमात्मा व्यवस्थितः ।
तमज्ञात्वा बिमूढ़ात्मा कुरुते केवल बहिः ।।

–७–७४

समस्त प्राणियों में मैं आत्मा ही स्थित हूँ । उसे न जानकर मूढ पुरुष केवल बाहर जड़ पाषाणादि में ही भगवत् भावना करता है ।

क्रियोत्पन्नै र्नैक भेदैर्द्रध्यैर्मे नाम्ब तोषणाम् ।
भुतावमानिनाचार्यामर्चितोऽहं न पूजितः ।।

–७–७५

क्रिया से उत्पन्न हुए अनेक पदार्थों से मैं पूजित नहीं होता हूँ । जड़ प्रतिमा एवं तोते की तरह जप, मन्त्र,श्लोकादि पाठ द्वारा भी मुझे कोई प्रसन्न नहीं कर सकता है । अर्थात् मैं जड़ क्रियाओं द्वारा उन भक्तों पर सन्तुष्ट नहीं होता हूँ, जो अन्य जीवों के साथ द्वेष भाव रख उनके रूप में छुपे मुझ आत्मब्रह्म का तिरस्कार करते हैं । उन मूर्ख भक्तों द्वारा,

प्रतिमा के द्वारा पूजित होकर भी मैं उनके द्वारा वास्तव में पूजित नहीं होता । अर्थात् मैं उनकी पूजा को स्वीकार ही नहीं करता हूँ । जो मेरे चैतन्य स्वरूप साकार मूर्ति के साथ द्वेष, कपट, हिंसा भाव रखते हें, वे इस आसुरी स्वभाव के कारण बारम्बार अधोगति को ही प्राप्त होते रहते हैं, मोक्ष को कदापि नहीं ।

तावन्मामर्चयेद्येवं प्रतिमादौ स्वकर्मभिः ।
यावत्सर्वेषु भूतेषु स्थितं चात्मनि न स्मरेत् ।।

–७–७६

मुक्त परमात्मदेव का अपने जाति, आश्रम, वर्णानुसार प्रतिमा आदि में तभी तक पूजन करना चाहिये, जब तक कि समस्त प्राणियों में और अपने आप में एक ब्रह्मनिष्ठा जाग्रत न हो सके ।

यस्तु भेदं प्रकुरुते स्वात्वनश्च परस्य च ।
भिन्नदृष्टेभयं मृत्युंस्तस्य कुर्यान्न संशयः ।। ७–७७

जो भी कर्म किये जाते हैं वे अपने में जीवत्व एवं कर्तृत्व बुद्धि द्वारा फल दाता ईश्वर को भिन्न मानकर ही किये जाते हैं । एक अखंण्ड निष्क्रिय सच्चिदानन्द आत्मब्रह्म में भेद बुद्धि करने वाले को जन्म–मरण रूप भय की ही प्राप्ति शास्त्रज्ञ बताते हैं ।

'द्वितीया द्वै भयं भवति'

इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं है । भेद दर्शी कभी अभय को प्राप्त नहीं होता है ।

तस्मात्कदाचिन्नेक्षेत भेदमीश्वर जीवयोः ।। ७–८०

इसलिये मुमुक्षु भेदोपासना का सर्वथा त्याग करदे, क्योंकि जीव, ईश्वर यह दो भेद भ्रम एक अखंड सत्ता में अविद्या तथा माया इन दो उपाधिके कारण ही प्रतीत होते हैं । जैसे एक अखण्ड आकाश में घट,

मठ यह दो उपाधियों के कारण वह घटाकाश, मठाकाश नाम वाला मिथ्या पुकारा जाता है। घट–मठ उपाधि रहित आकाश अखंड है। इसी प्रकार अविद्या माया रहित परमात्मा एक ही है।

मामतः सर्व भूतेषु परिच्छिन्नेषु संस्थितम्।
एकं ज्ञानेन मानेन मैत्र्या चार्चेदभिन्नधिः॥ ७–७८

इसलिये अभेद दर्शी ज्ञानी भक्त समस्त परिच्छिन्न प्राणियों में स्थित मुझ एकमात्र अपरिच्छिन्न परमात्मा को सोऽहम् भाव से भजते है। साधक को चाहिये कि वह सब प्राणियों के प्रति समता भाव, मैत्री भाव, आत्मीयता तथा एकत्व भाव द्वारा पूजन करें। तभी वे मोक्ष को प्राप्तकर सकेंगे। भेद भाव से उपासना करने वाले करोड़ों जन्म में भी मुक्त नहीं हो सकेंगे।

अन्तवन्त क्षत्रिय ते जयन्ति, लोकाञ्जनाः कर्मणा निर्मितेन।
ज्ञानेन न द्वास्तेज अभ्येति, नित्यं न विद्यते ह्यन्यथातस्य पन्था॥

–महाभारत उद्योग पर्व ३–१६

हे क्षत्रिय ! वे कर्म परायण लोग तो अपने किये हुए यज्ञ कर्म द्वारा नाशवान् लोकों को ही प्राप्त होते हैं; किन्तु ज्ञान के द्वारा विद्वान आत्मज्ञानी महापुरुष नित्य प्रकाश स्वरूप – ब्रह्म (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं। इसके सिवा उसका अन्य मार्ग नहीं है।

कर्मोदये कर्मफलानुरागास्तत्रानुयान्ति न तरन्ति मृत्युम्।

– महाभारत सनत्सुजातिय १–६

कर्म के अनुष्ठान करने पर कर्म फल में आसक्त जीव उस कर्मफल भोगने के लिये जन्म–मरण के चक्कर में भटकते हैं। क्योंकि बिना आत्मज्ञान के कोई मोक्ष को प्राप्त नहीं होते हैं।

कर्मणा बध्यते जन्तु र्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ।।

संन्यास उप.२/१८

जीव कर्म से बन्धता है और ज्ञान से मुक्त हो जाता है । इसीलिये पारदर्शी मुनीगण अर्थात् आत्मज्ञानी महापुरुष यज्ञादि कर्म नहीं करते हैं ।

ज्ञानं विशिष्टं न तथाहि यज्ञाः ।
ज्ञानेन दुर्ग तरति न यज्ञेः ।।

जैसा ज्ञान उत्तम है वैसा यज्ञादि अनित्य कर्म नहीं । क्योंकि पुरुष ज्ञान से दुर्गम संसार जन्म–मरण चक्र को पार कर सकता है, यज्ञादि अनित्य कर्मों से मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती ।

नैनं कृताकृते तपतः । बृह. उप. ४–४–२२

कृत और अकृत अर्थात् मैंने यह करने योग्य शुभ कर्म क्यों नहीं किया एवं यह नहीं करने योग्य पाप कर्म मुझसे क्यों हो गया ? इस प्रकार का द्वन्द्व अज्ञानी को जिस प्रकार निर्देश करता है अर्थात् दुःख दायी होता है. वैसा ज्ञानी को शुभाशुभ कर्मों का स्पर्श नहीं होता है । वह कर्म में साक्षी ही रहता है, अज्ञानी की तरह कर्ता–भोक्ता नहीं होता है ।

क्रियमाण कर्म रहस्य

कर्म का कर्ता कर्म द्वारा पदार्थ की उत्पत्ति, पदार्थ का नाश, पदार्थ की प्राप्ति, पदार्थ का विकार तथा पदार्थ का संस्कार रूप पांच प्रकार का ही उपयोग कर सकता है, इनसे भिन्न कर्म द्वारा कर्ता को अन्य उपयोग नहीं हो सकता। जैसे कि आत्मा का मोक्ष अथवा परमात्मा की प्राप्ति हेतु मुमुक्षुता जाग्रत होने पर कर्म का उपयोग नहीं रहता है ।

१. **उत्पत्ति रूप कर्म** :– जैसे पुरुष द्वारा सन्तान उत्पन्न करना, कृषक द्वारा अन्न, वृक्षादि उत्पन्न करना, कुम्भार द्वारा बर्तन, ईटं, खप्पर, दीपक, घड़ा आदि उत्पन्न करना अर्थात् पहले जो अस्तित्त्व रूप नहीं उसकी उत्पत्ति करने हेतु अभिलाषी को कर्म करना आवश्यक है।

आत्मा का मोक्ष नित्य स्वभाव होने से उसके लिये कोई कर्म करना मुमुक्षु के लिये कर्तव्य नहीं है। धर्मीका धर्म नित्य होता है, अग्नि उष्णता वत। अग्नि किसी काल में शीतल नहीं होती उसी प्रकार आत्मा कभी बन्ध को प्राप्त नहीं होता। यदि आत्मा का बन्धन स्वभाव होता तो अविनाशी नित्य आत्मा को उसके बन्धन धर्म को किसी साधन द्वारा मिटाया नहीं जा सकता था, जैसे कोई बर्फ को उष्ण नहीं कर सकता है इसलिये जिज्ञासु को आत्मा की मुक्ति उत्पत्ति हेतु किसी साधन की आवश्वकता नहीं है।

वेदान्त श्रवण भी आत्मा को मुक्ति प्रदान करने के लिये साधन नहीं है। बल्कि मैं आत्मा नित्य मुक्त हूँ, मेरे कल्याण के लिये किंचित् भी साधन कर्तव्य रूप नहीं है, साधक को ऐसा बोध जाग्रत कराने हेतु ही है।

अनर्थ की निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति (अनुभूति) रूप मोक्ष शास्त्रों में बताया है। सो आत्मा में अनर्थ नित्य निवृत्त है एवं आत्मा स्वयं परमानन्द स्वरूप ही है, इस हेतु कर्म आवश्यक नहीं है । जैसे रस्सी में सर्प नित्य निवृत्त है इस प्रकार स्वयं सिद्ध आत्मा का मोक्ष स्वभाव होने से कर्म की उपयोगिता नहीं है । जो वस्तु पूर्व से न होवे उसकी कर्म द्वारा उत्पत्ति होती है। जिन्होंने वेदान्त महावाक्यों का श्रवण करके भी मोक्षार्थ कर्तव्य माना हैं, उन्होंने आत्मा के स्वभाव को नहीं पहचाना।

२. **नाश रूप कर्म**: – जैसे वृक्ष, पौधा, मकान, अलंकार, घड़ा आदि के कर्म कर्ता उत्पत्ति रूप कर्म द्वारा जिसकी उत्पत्ति करता है उसे कुठार, दंड प्रहार, हथौड़ी, छैनी, छुरा आदि साधन द्वारा नाश भी कर देता है । इस प्रकार मुमुक्षु को कर्म द्वारा किसका नाश करने की आवश्यकता पड़ सकेगी ? समाधान मिला कि जो परमात्मा अखंड है उसके पाने के लिये या मोक्ष के लिये धन, पुत्र, पति व्यापार, नौकरी, ग्राम, वेश, आदि कोई भी बाधा रूप नहीं है । इसलिये इन्हें मारने, छोड़ने, या त्याग कर किसी अन्य स्थल पर भागने की आवश्यकता भी नहीं है, तथा आत्मा में बन्धन स्वरूप से नहीं केवल अज्ञान से ही भासता है । क्योंकि परमात्मा तो सब देश, काल तथा अणु–अणु स्वरूप है तब ऐसे अखंड सत्ता आत्म स्वरूप को पाने में यदि कोई बाधा, विघ्न, रुकावट है तो वह मात्र स्वरूप ज्ञान का न होना ही है । अर्थात् अज्ञान ही प्रतिबन्ध है और इस आत्म अज्ञान का नाश किसी कर्म द्वारा नहीं बल्कि आत्म ज्ञान द्वारा ही होगा । अतः मोक्ष हेतु न उत्पत्ति रूप कर्म करने की मुमुक्षु को आवश्यकता होगी, न नाश रूप कर्म करने की जरूरत है । अब कर्म का तीसरा उपयोग प्राप्ति रूप कर्म का विचार करके देखते हैं ।

३. प्राप्ति रूप कर्म :– जो वस्तु प्राप्त कर्ता प्रार्थी (जिज्ञासु) से परिच्छिन्न हो, दूर हो, एक देशीय हो तब ऐसी वस्तु को पाने हेतु अभिलाषी, प्रार्थी को प्राप्ति रूप कर्म तो अवश्य करना पड़ेगा तभी वह वस्तु को प्राप्तकर सकेगा । फिर जो वस्तु दूर है, परिच्छिन्न है, वह नाश रूप होती है । खंडित वस्तु अखन्डानन्द रूप कभी नहीं हो सकेगी । फिर जो आत्मा का मोक्ष तो अग्नि–उष्णवत्, बर्फ–शीतलवत्, सूर्य–प्रकाशवत्, बिजली–चमकवत् नित्य स्वभाव है, उसको मोक्ष प्राप्ति कहना भ्रम मात्र होगा । जिसका बंध है उसको मोक्ष प्राप्ति योग हो सकता है सो आत्मा को तीनों कालों में बन्ध है नहीं जैसे स्फटिक मणि सभी प्रकार के रगों से असंग निर्लेप है किन्तु संयोग सम्बन्ध से रंगीन प्रतीत होती है । अथवा आकाश घट के समस्त विकारों से असंग है किन्तु अज्ञानी को संग भ्रांति होती है । उसी प्रकार आत्मा नित्य मुक्त है किन्तु देह अन्तःकरण के सम्बन्ध से आत्मा बद्ध रूप न होकर भी अज्ञान से बद्ध भासता है । उस अज्ञान का नाश कर्म से नहीं बल्कि आत्मज्ञान द्वारा ही हो सकेगा । अब कर्म का चौथा उपयोग विकार रूप कर्म का उपयोग आत्मा में देखते हैं । प्रथम रूप को त्याग कर अन्य रूप ग्रहण का नाम विकार है जैसे चनादाल पीसकर बेसन एवं पकोड़ी, मोहनथाल आदि विकार क्रिया होती है ।

४. विकार रूप कर्म :– जैसे आत्मा में प्रथम बन्ध स्वीकार करे और साधन करने के पश्चात् आत्मा मोक्ष दशा में कोई चतुर्भुजादि विशेष रूप धारण कर सके तो अन्य रूप की प्राप्ति रूप विकार कर्म का उपयोग मुमुक्षु को बन सके, सो अन्य रूप की प्राप्ति निर्विकार, निराकार, कूटस्थ, एकरस, असंग आत्मा में कदापि सम्भव नहीं है । क्योंकि विकारी वस्तु सदा नाशवान् ही होती है । फिर सगुण–साकार वस्तु में ही विकार क्रिया सम्भव हो सकती है किन्तु निर्गुण–निराकार आत्मवस्तु में विकार रूप कर्म का मुमुक्षु को कोई उपयोग नहीं होता । इस प्रकार

कर्म के उत्पत्ति, नाश प्राप्ति तथा विकार रूप चारों उपयोग व्यर्थ सिद्ध हो गये अब अन्तिम संस्कार रूप कर्म का विचार करके देखते है कि क्या मोक्षाभिलाषी को संस्कार रूप कर्म का भी उपयोग हो सकता है या नहीं। संस्कार दो प्रकार का होता है मल की निवृत्ति और गुण की उत्पत्ति रूप।

५. **संस्कार रूप कर्म** :– जैसे वस्त्र के धोने की क्रिया करने से मैल की निवृत्ति हो जाती है तथा उसे नील, टीनोपाल, अथवा रंग में डुबाने से शुभ्र, स्वेत, या रंग गुण की उत्पत्ति होने से संस्कार रूप कर्म का उपयोग होता है। उसी तरह मल की निवृत्ति रूप संस्कार भी मुमुक्षु को आवश्यकता नहीं है।

मुमुक्षु को अन्तःकरण में मलकी निवृत्ति तो सिद्ध ही है। अन्तःकरण शुद्धि वाले जिज्ञासु को ही मुक्ति या आत्म प्राप्ति की इच्छा जाग्रत होती है। मलिन अन्तःकरण में तो आत्म जिज्ञासा '**अथातो ब्रह्म जिज्ञासा**' होती ही नहीं है। अस्तु ! कर्म–उपासना द्वारा जिसका चित्त शुद्ध संस्कार वाला हुआ है वह उत्तम जिज्ञासु का यहाँ विचार किया जा रहा है। आत्मा नित्य शुद्ध है उसमें मल की कल्पना भी नहीं की जा सकती । जैसे सूर्य में अन्धकार नहीं होता। इसलिये आत्मा में मल की निवृत्ति उपेक्षित नहीं है।

अज्ञान को मल कहें तो अज्ञान आत्मा में है तो भी उसकी निवृत्ति कर्म से नहीं ज्ञान से हो सकती है। जैसे रात्रि या घर के अन्धकार प्रकाश ही विरोधी या निवर्तक है, अन्य कर्म द्वारा अन्धकार लय को प्राप्त नहीं होता। उसी प्रकार अज्ञान का विरोधी ज्ञान ही है कर्म नहीं।

आत्मा निर्गुण, एक रस, असंग है उसमें मुक्ति गुण को उत्पत्ति कहना भी सम्भव नहीं। इस प्रकार मुमुक्षु को उत्पत्ति रूप संस्कार का भी उपयोग नहीं।

तात्पर्य यह है कि कर्म के पांच ही प्रकार का फल कर्म के कर्ता को प्राप्त होता है इससे भिन्न नहीं। वह पांच प्रकार कर्म के फल की मुमुक्षु को उपयोगिता नहीं हैं । इसलिये मोक्ष प्राप्ति की इच्छा वाले उत्तम जिज्ञासु को कर्म, उपासना, ज्ञान के बहिरंग साधनों का बल पूर्वक त्याग कर वेदान्त के श्रवण, मनन, निदिध्यासन रूप ज्ञान के अन्तरंग साधन को ग्रहण करने हेतु किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण ग्रहण करना ही परम कर्तव्य है। उपासना भी मानसिक कर्म है अतः उसका तात्पर्य भी इसी कर्म के खंडन की युक्ति अन्तर्गत जान लेना चाहिये ।

कर्म किसके लिये कर्तव्य रूप ?

देह से भिन्न जो आत्मा को कर्ता–भोक्ता मानता है ऐसा अज्ञानी ही कर्म का अधिकारी है । जो देह को ही अपना स्वरुप जानता है ऐसा मूढ़ तो जन्मान्तर में कर्म का फल भोग करने की आशा से कर्म नहीं करेगा । क्योंकि जिस देह से कर्म किया है एवं अपने को भी देह ही माना है ऐसा देह तो यहीं अग्नि द्वारा भस्मीभूत हो जाता है वह देह जन्मान्तर को पुनः प्राप्त होता ही नहीं है । अतः देह से भिन्न जो आत्मा को नहीं जानता है उससे तो आगामी कर्म होंगे ही नहीं । अस्तु जो देह से भिन्न आत्मा को कर्ता–भोक्ता एवं मृत्यु के बाद अन्य जन्म में फल भोग की आशा करने वाला ही कर्म करता है ।

मैं शुभाशुभ कर्मों का कर्ता हूँ एवं पुण्य–पाप फल का भोक्ता हूँ । ऐसा भ्रान्ति ज्ञान जिसे होता है वही अज्ञानी कर्म करने का अधिकारी होता है । कर्ता, कर्म तथा फल का भेद ज्ञान जिसे होता है वही अज्ञानी कर्म में रूचि रखता है । ज्ञानवान को कर्ता, कर्म, फल रूप त्रिपुटी अपने से भिन्न प्रतीत नहीं होती है तथा ज्ञानवान् अपने को कर्म का कर्ता–भोक्ता भी नहीं मानता न जन्मान्तर को प्राप्त होता है तब ऐसा ज्ञानवान् किस इच्छा से कर्म में प्रवृत होगा ? कदापि नहीं ।

‘कर्म कि होहीं स्वरूप ही चिन्हें ? रामायण

अर्थात् जिसने सद्गुरु कृपा से अपने को देह संघात् से भिन्न द्रष्टा, साक्षी, आत्म रूप से जान लिया है उससे भेदोपासना एवं भेदमूलक

कर्म कभी नहीं हो सकेंगे ? साधक को प्रथम अन्तःकरण शुद्धि के लिये आत्मजिज्ञासा उदय होने पर्यन्त योग, यज्ञ, अग्निहोत्र, पूजा, पाठ, तीर्थ, व्रत, उपवास आदि साधन करना चाहिये। जिज्ञासा उदय होने पर कर्म विधि को अनादर करके ज्ञान के अन्तरंग साधन श्रवण, मनन आदि करना चाहिये इसी का नाम क्रम समुच्चय है।

ज्ञान के अन्तरंग साधन, श्रवण, मनन आदि और कर्म रूप पूजा, स्तुति, जप, तीर्थ, यज्ञ, अग्नि होत्र आदिक बहिरंग साधन एक ही काल करना ''सम समुच्चय'' कहलाता है, जो वेद विरुद्ध मत है ।

ब्रह्म जिज्ञासु समसमुच्चय का त्याग कर क्रम समुच्चय को ग्रहण करता है !

कर्मोपासना एवं ज्ञान में अग्नि व जलवत् प्रकाश एवं अंधकारवत् विरोध है। क्योंकि कर्मी को कर्म करने में या भक्त को उपासना करने में यह भेद भाव रहता है कि मैं कर्म का कर्ता हूँ एवं ईश्वर मेरे कर्म का फलदाता है। उपासक भी मैं उपासक हूँ, 'देव उपास्य है' इस भेदबुद्धि से उपासना करता है, इसलिये कर्म स्थूल एवं उपासना सूक्ष्म होने से कर्म का ही स्वरूप है ! किन्तु ज्ञानी को देह, प्राण, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण के धर्म स्वप्न पदार्थों की तरह मिथ्या निश्चय होते हैं एवं अपने प्रति एक अखंड चैतन्य सोऽहम्, शिवोऽहम् , अहंब्रह्मास्मि निश्चय होता है । इसलिये कर्म–उपासना एवं ज्ञान का विरोध होने से सम समुच्चय नहीं हो सकता ।

जिस अज्ञानी को देह, जाति, आश्रम, परिवार में अहं–मम भाव होता है वही वेदोक्त कर्म–उपासना का अधिकारी है । ज्ञानी को ब्रह्म के प्रति सोऽहम्,शिवोऽहम् निश्चय होने से उसे कर्म कर्तव्य रूप नहीं ।

१. आक्षेप एवं समाधान

यदि कोई यह माने कि जैसे जल का सिंचन वृक्ष की उत्पत्ति एवं फल का हेतु है, इसी प्रकार कर्म–उपासना ज्ञान उत्पत्ति एवं मोक्ष फल

का हेतु मानना चाहिये । इस प्रकार कर्म–उपासना ज्ञान तीनों मोक्ष के हेतु हैं । इसलिए ज्ञानी को कर्म करना चाहिये । जैसे जल से उत्पन्न वृक्ष को जल सिंचन न करे तो वृक्ष सूख जावेगा एवं फलोत्पति भी नहीं हो सकेगी । इसी प्रकार कर्म–उपासना से उत्पन्न आत्म जिज्ञासा का कर्म–उपासना त्याग करने से जैसे जल बिना वृक्ष के नाश की तरह उत्पन्न जिज्ञासा का नाश हो जावेगा । शुभ कर्म नहीं करेगा तो ज्ञानवान् को भी पाप लगेगा । तथा उपासना के त्याग करने से अन्तःकरण फिर चंचल हो जावेगा एवं चंचल चित्त में उत्पन्न ज्ञान पुनः नष्ट हो जावेगा । अतः ज्ञान होने के पश्चात् भी ज्ञानी को कर्म–उपासना का त्याग नहीं करना चाहिये बल्कि भली प्रकार सम्पादन करना ही कर्तव्य है ।

उपरोक्त कथन शास्त्र विरुद्ध है ज्ञानी के लिये किंचित् भी कर्तव्य नहीं है ।

नैवास्ति किंचित् कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित ।

– जाबाल उप.

तस्य कार्यं न विद्यते ।

–गीता ३–१७

अर्थात् आत्मज्ञान रूपी अमृत का पान करके जो मुमुक्षु कृतकृत्य (कृतार्थ) हुआ है उसके लिये वेदोक्त कर्मोपासना किंचित् भी कर्तव्य नहीं है यदि वह अपने मुक्ति हेतु आत्मनिष्ठा से भिन्न कुछ कर्म–उपासना कर्तव्य मानता है तो वह ज्ञानी नहीं है ।

ब्रह्म जिज्ञासु के लिये कर्म, उपासना को कर्तव्य रूप जो कहा गया है, वह अनुचित ही है । यद्यपि जल सिंचन वृक्षोत्पत्ति में एवं रक्षा में सहायक है किन्तु वृक्ष से फल उत्पत्ति में नहीं । फल देने वाले वृद्ध वृक्ष भी जल सिंचन द्वारा फल देना बंद कर देते हैं । केवल वृक्ष की रक्षा मात्र होती है । जल से फल देने का नियम नहीं है । यदि ऐसा होता तो समस्त वृक्षों में फल मिलते किन्तु कई वृक्ष, पौधे, लताएँ केवल पत्ते,

फूल ही मात्र देते हैं । फल देने के संस्कार वाला वृक्ष ही जल से पुष्ट हो फल देता है । फल संस्कार से रहित पुष्ट वृक्ष फल नहीं देता है ।

इसी प्रकार कर्म–उपासना भी ज्ञानोदय में उपयोगी है, मोक्ष में नहीं । इसलिए साधक आत्म जिज्ञासा पर्यन्त ही कर्म–उपासना करे, पश्चात् नहीं । ज्ञानोदय के पश्चात् मोक्ष निमित्त कर्म, उपासना करने वाला साधक ज्ञानी नहीं है । शुद्ध एवं निश्चल (एकाग्र) अन्तःकरण में ही आत्म जिज्ञासा उदय होती है । आत्म जिज्ञासा ही अन्तःकरण शुद्धि का प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध प्रमाण है । ऐसा उत्तम जिज्ञासु अहंब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ) इस वेदान्त ज्ञान के विरोधी ''मैं उपासक हूँ,भगवान मेरे उपास्य है'' इस कर्म–उपासना का त्याग करें । उत्तम जिज्ञासु को कर्म–उपासना निष्फल है ।

कर्म उपासना से ज्ञान की रक्षा नहीं

एकबार उत्पन्न हुई अन्तःकरण की ब्रह्माकार वृत्ति से देह में अहं बुद्धि एवं देह सम्बन्धी जनों से ममत्व बुद्धि का नाश हो जाने पर, पुनः नष्ट हुई अनात्म वृत्ति का उदय नहीं होता है । अर्थात् मरा हुआ अज्ञान पुनः जीवित होकर उत्पन्न ब्रह्माकार वृत्ति को नष्ट नहीं कर सकता । अस्तु उस ब्रह्माकार वृत्ति की रक्षा हेतु कर्म–उपासना की जरूरत नहीं है । बल्कि अद्दढ़ ज्ञान के लिये बारम्बार वेदान्त तत्त्व के ही श्रवण, मनन, निदिध्यासन करने की जरूरत है । जो शत्रु जीवित अवस्था में नहीं मार सका वह मृत अवस्था को प्राप्त हो पुनः जीवित होकर कैसे अपने प्रतिद्वन्दी शत्रु को मार सकेगा ? अस्तु जो यह आक्षेप करते हैं कि ''यदि ज्ञानी कर्म–उपासना नहीं करेगा तो अन्तःकरण पुनः मलिन एवं चंचल हो जाने से उसका उदय ज्ञान भी नष्ट हो जावेगा इसलिए ज्ञानवान को भी कर्म करना चाहिये'' यह बात संभव नहीं है ।

कर्म, उपासना द्वारा अन्तःकरण में उदय 'अंह ब्रह्मास्मि' द्रष्टा, साक्षी, निष्क्रिय रूप बुद्धि की रक्षा तो नहीं अपितु नाश ही होगा । क्योंकि

कर्म–उपासना का अनुष्ठान करते समय तदार्थ फल, फूल, जल, धूप, दीप, काष्ठ, अग्नि, घृत आदि सामग्री की ही वृत्ति होगी, उतने काल ब्रह्माकार वृत्ति नहीं होगी। क्योंकि एक अन्तकरण में एक काल में कर्ता एवं साक्षी बुद्धि वृत्ति कभी नहीं हो सकती। इस प्रकार कर्म ज्ञान की उत्पत्ति में तो सहायक है किन्तु उत्पत्ति पश्चात् सहायक नहीं अपितु विरोधि ही है।

ज्ञानी को पाप पुण्य नहीं

ब्रह्मज्ञान रूप फल नित्य है। उसका नाश कभी संभव नहीं है। ब्रह्मविद्या एवं उसके फल का कभी नाश नहीं होता है। ज्ञानवान् को कर्म में कर्ता बुद्धि नहीं होने से पाप का स्पर्श नहीं होता है। एक ब्रह्म सत्ता से भिन्न उसकी दृष्टि में अन्य किंचित् भी प्राप्तव्य रूप नहीं होने से उसका मन चंचलता को भी प्राप्त नहीं होता है।

जो शुभ कर्म का त्याग है सो पाप रूप फल का हेतु नहीं होता है, किन्तु निषिद्ध वेद विरूद्ध कर्म ही पाप का हेतु है। ज्ञानवान् को सब प्रकार से पुण्य–पाप का स्पर्श संभव नहीं है। क्योंकि पाप–पुण्य का आश्रय अन्तःकरण परमार्थ से तो है ही नहीं केवल अज्ञान से ही मिथ्या प्रतीत होता है। सो अविद्या अज्ञान और उसका कार्य मिथ्या प्रतीति रूप अन्तःकरण ज्ञानवान् को नहीं भासते हैं इसलिए ज्ञानवान् को शुभ कर्मों का फल अथवा अशुभ के अनुष्ठान से पाप स्पर्श नहीं कर सकता।

ज्ञानी को कर्म–उपासना नहीं

जिसे दृढ़ ज्ञान हो चुका है उसे किंचित् भी कर्तव्य नहीं है। एकबार उत्पन्न ब्रह्माकार वृत्ति ज्ञान द्वारा अविद्या का नाश हो जाता है। वह ज्ञान स्वयं भी दूर हो जावे तो भी ब्रह्माकार वृत्ति के अभाव में उत्पन्न आत्म निष्ठा का नाश नहीं हो सकेगा। उसके बाद उस वृत्ति के अभाव में उस देहाकार वृत्ति के नाशक ब्रह्माकार वृत्ति की आवृत्ति

करते रहने की भी आवश्यकता नहीं है । हाँ, जीवन–मुक्ति के आनन्द हेतु ब्रह्माकार वृत्ति की आवृत्ति अपेक्षित होती है । उसे वेदान्त तत्त्व का ही बारम्बार चिन्तन करते रहने से ही उसकी ब्रह्माकार वृत्ति दृढ हो सकेगी किन्तु कर्म–उपासना से नहीं ।

ज्ञानवान को अन्तःकरण की चंचलता से मोक्ष में कोई रूकावट नहीं किन्तु चंचलता से स्वरूपानन्द का भान नहीं हो पाता है । इसलिये उसे उपासना करना भी कर्तव्य नहीं क्योंकि ज्ञानी के लिये विक्षेप समाधि दोनों अवस्था अन्तःकरण की है और वह मिथ्या है । इसलिये अन्तःकरण की स्थिरता हेतु भी ज्ञानी के लिये कर्मोपासना कर्तव्य नहीं ।

जिस ज्ञानी को जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द भोगने की इच्छा हो एवं विक्षेप दुःख रूप प्रतीत हो वह उसके निमित्त वेदान्त तत्त्व का ही बारम्बार चिन्तन करे किन्तु कर्मोपासना साधन का तो त्याग ही करे । क्योंकि अन्तःकरण की एकाग्रता मात्र से ब्रह्मानन्द की विशेष अनुभूति नहीं होती है । ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा ही ब्रह्मानन्द की अनुभूति होती है । वेदान्त चिन्तन से ही ब्रह्माकार वृत्ति होती है किन्तु कर्म–उपासना द्वारा नहीं ।

जिसे आत्मा का दृढ़बोध है उसे तो किंचित् भी कर्तव्य नहीं किन्तु जिसे अद्दढ़ बोध हुआ है उस ज्ञानी को भी दृढ़ ज्ञानार्थ कर्म–उपासना का त्याग कर वेदान्त तत्त्व का ही बारम्बार श्रवण, मनन, निदिध्यासन कर्तव्य है, कर्म–उपासना नहीं । अन्तःकरण की चंचलता अथवा पाप वासना जो कुछ मंद जिज्ञासुको शेष रह गई है वह वेदान्त तत्त्व के श्रवण से ही दूर हो जावेगी उसके लिये कर्म–उपासना साधन करने की आवश्वकता नहीं ।

२.आक्षेप एवं समाधान

यदि कोई कहे आकाश में जैसे एक पंख से पक्षी का गमन सम्भव नहीं होता किन्तु दो पंख से ही उड़ना सम्भव होता है, तैसे मोक्षलोक, परमधाम को जाने वाले मुमुक्षु को एक ज्ञान रूप पंख से गमन नहीं हो सकेगा, उसके लिये उसे कर्म–उपासना रूप दूसरे पंख को भी साथ ग्रहण करना होगा ।

यहाँ मुमुक्षु के लिये पक्षी के दो पंख को लेकर गमन क्रिया करने का द्रष्टान्त उचित नहीं है । क्योंकि पक्षी के दोनों पंख एक साथ एक काल में उत्पन्न होकर देह पर्यन्त रहते हैं । फिर पक्षी का गन्तव्य स्थान उससे दूर एवं भिन्न है । इसलिये उसके लिये दो पंख होना उचित एवं आवश्यक है ।

ज्ञानी का लक्ष्य आत्मा मोक्ष यह ज्ञानी से भिन्न नहीं । अपितु उसका स्वरूप ही है । इसलिये मोक्षार्थ गमन रूप क्रिया की ज्ञानी को आवश्यकता नहीं । वेद कहता है –

''न तस्य प्राणाउत्क्रमन्ते अत्रेय समीवलीयन्ते''

पूर्णकाम ज्ञानी के प्राण देह नाश पश्चात् अज्ञानी की मृत्यु सदृश्य किसी अन्य लोक या शरीर में नहीं जाते हैं बल्कि यहीं अपने मूल भूत तत्त्वों में लय होते हैं ।

ज्ञान एवं कर्म का सम समुच्चय नहीं होता इसका परस्पर अग्नि एवं जल के या प्रकाश एवं अंधकार के सदृश्य विरोध है । कर्म–उपासना द्वैताभाव से सम्पादित होते हैं जैसे मैं कर्मों का कर्ता हूँ तथा मुझसे भिन्न मेरा भगवान इसका फल दाता है । जबकि ज्ञान अद्वैत भाव से सम्पादित होता है । मैं ब्रह्म हूँ मेरे अतिरिक्त अन्य किञ्चित् भी नहीं है । इस प्रकार एक अन्तःकरण में एक समय दो विरोधी निष्ठा नहीं रह सकती है ।

देह से भिन्न कर्ताभाव रखने वाला ही कर्मका अधिकारी है । सो मैं कर्ता भोक्ता आत्मा हूँ ऐसी भ्रान्ति ज्ञानवान को नहीं होती इसलिए वह कर्म का अधिकारी नहीं है ।

देह में मैं पने की आत्मबुद्धि, संगभ्रान्ति अज्ञानी को होने पर देह के धर्म, जाति, आश्रम, नाम, रूप, अवस्था, सम्बन्ध, परिणाम अपने में प्रतीत होते हैं । अज्ञानी की तरह ज्ञानवान् को देह में आत्म बुद्धि नहीं होती है बल्कि सोऽहम्, शिवोऽहम् रूप से ही ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान रहता है इसलिये स्थूल देह एवं उसकी सात चिंताओं से मुक्त ज्ञानी को कर्म करना कर्तव्य नहीं है । करने से कोई हानि भी नहीं है । कर्म–उपासना का ज्ञानोत्पत्ति में तो उपयोग है । किन्तु ज्ञानोदय के बाद मोक्ष में उपयोग नहीं है । केवल अधिष्ठान का ज्ञान ही भ्रान्ति की निवृत्ति कराने में समर्थ है, जैसे सर्प भ्रम को रस्सी अधिष्ठान ज्ञान द्वारा ही दूर किया जा सकता है इससे भिन्न सहश्रों साधन द्वारा सर्प भ्रम को दूर नहीं किया जा सकता । उसी प्रकार बंध की भ्रान्ति केवल अधिष्ठान आत्मा के ज्ञान से ही दूर हो सकेगी । बंध भ्रम को दूर करने के लिये कोटि कर्म–उपासना भी समर्थ नहीं है ।

ज्ञान का फल मोक्ष जो स्वर्ग की तरह लोक विशेष अदृष्ट माने तो वह वेद वाक्य विरुद्ध एवं नाशवान् होगा । क्योंकि परिच्छिन पदार्थ नाशवान् होते हैं एवं ज्ञानी के प्राण अज्ञानी की तरह मृत्यु उपरान्त अन्य शरीर को प्राप्त नहीं होते हैं ।

जिसको आत्म बोध नहीं हुआ है किन्तु आत्मा के जानने को तीव्र इच्छा है एवं भोगों से वैराग्य है उसका अन्तःकरण शुद्ध है ऐसे उत्तम जिज्ञासु को आत्म बोध हेतु आत्म ज्ञान का ही श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना कर्तव्य है । कर्म–उपासना का फल तो उसे आत्म जिज्ञासा के रूप में सिद्ध ही है ।

ज्ञान की सामान्य इच्छा कर वेदान्त तत्त्व श्रवण में प्रवृत्त हुआ है एवं भोग में आसक्त चित्त वाला मंद जिज्ञासु भी वेदान्त श्रवण, मनन का त्याग कर कर्मोपासना में प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। कर्म–उपासना का जो फल मल विक्षेप दोष की निवृत्ति है सो वह उसे वेदान्त तत्त्व के श्रवण, मनन से ही धीरे–धीरे हो ही जावेगी अन्तःकरण का दोष दूर होते ही इस जन्म या अगले जन्म में इसलोक या इष्ट लोक में दृढ़ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त कर सकेगा।

आरुढ़ पतित

अदृढ़ ज्ञानी जो आत्म निष्ठा को दृढ़ता से प्राप्त नहीं हुआ है जो संशय बुद्धि वाला है यदि वह ज्ञान को छोड़ कर्म–उपासना में लग जावेगा तो अदृढ़ ज्ञान भी नष्ट हो जावेगा ऐसे साधक को वेदान्त दृष्टि में आरूढ़ पतित कहते हैं ।

जिस मंद बोध वाले श्रोता को ''आत्मा असंग है अथवा सम्बन्ध वाला है'' इस प्रकार संशय हो उसे मैं आत्मा असंग हूँ मुझे किंचित् भी कर्तव्य नहीं, इस प्रकार बारम्बार चिन्तन करना ही कर्तव्य है । इस प्रकार उसका अदृढ़ज्ञान दृढ़ता को प्राप्त हो सकेगा एवं मैं कर्ता–भोक्ता हूँ यह विपरीत निश्चय दूर हो सकेगा । यदि मंद बोध वाला कर्म–उपासना करेगा तो उत्पन्न हुआ बोध भी नष्ट हो जावेगा ।

जैसे पक्षी अपने अंड़े के फटने से पूर्व तक उसपर बैठ गर्मी पहुँचाता है, अंड़े फटने पर बाल पक्षी के पैदा होने के बाद नहीं बैठता है । यदि वृद्ध पक्षी उस नवजात बाल् पक्षी पर बैठा रहे तो उस अंड़े के रस में बाल पक्षी के पंख गल जावेंगे । किन्तु उस वृद्ध पक्षी की उस रस से कोई हानि नहीं होगी । इसी प्रकार ज्ञान की उत्पत्ति से पूर्व कर्म, उपासना का सेवन करते रहने से जब आत्म जिज्ञासा उदय हो जावे तब कर्म, उपासना करना छोड़ देना चाहिये । यदि कर्म–उपासना त्याग नहीं करेगा तो बाल पक्षी की तरह मंद ज्ञान का भी नाश हो जावेगा । वृद्ध पक्षी को जैसे अंड़े के रस से कोई हानि नहीं उसी प्रकार दृढ़ बोध वाले ज्ञानी की भी लोक शिक्षार्थ कर्म, उपासना द्वारा कोई भी हानि नहीं एवं स्वयं के लिये कोई उपयोग भी नहीं है ।

दृढ़ बोधवान् की कर्म,उपासना आभास मात्र होती है । जैसे आग में जला बीज पुनः अकुंरित नहीं होता इसी प्रकार ज्ञानी के कर्म प्रतीती मात्र है । परन्तु अदृढ़ ज्ञानी यदि कर्म–उपासना करेगा तो उसके लिये अहं ब्रह्मास्मि, इस अखण्ड ब्रह्म निष्ठा से उसे पतित करने वाले होगें । तथा ब्रह्म जिज्ञासा उदय होने के पूर्व भी यदि साधक कर्म, उपासना का त्याग कर देगा तो भी उसका पतन ही होगा ।

अब जिसे ज्ञान में इच्छा होते हुए भी जो भोगासक्त होने के कारण वेदान्त तत्त्व के श्रवण में प्रवृत्त नहीं हुआ ऐसे व्यक्ति को निष्काम कर्म,उपासना में ही अधिकार है ।

और जो भोगासक्त ज्ञान की इच्छा रहित है एवं निष्काम कर्म अभिलाषी भी नहीं है उसका सकाम कर्म में ही अधिकार है ।

उपरोक्त अधिकारी भेद से स्पष्ट होता है कि ज्ञानवान एवं ज्ञानाभिलाषी मुमुक्षु का कर्म, उपासना में अधिकार नहीं है किन्तु मंद बोधवान् को कर्म–उपासना पतित करने वाले हैं । दृढ़बोध वाला कर्म–उपासना करे भी तो उसकी कोई उन्नति अथवा अवनति नहीं है ।

कर्म–उपासना अन्तःकरण शुद्धि और एकाग्रता द्वारा ज्ञान की उत्पत्ति में सहायक है, परन्तु ज्ञान की जिज्ञासा होने के बाद यदि वह उपासना करे तो उत्पन्न ज्ञान, आत्म जिज्ञासा, मुमुक्षुता का नाश हो जावेगा । इसलिए कर्म, उपासना ज्ञान निष्ठा के रक्षक नहीं अपितु कर्म–उपासना विरोधी अवश्य है ।

२. ज्ञान विरोधी कर्म कैसे ?

मैं कर्ता हूँ और यज्ञादिक मेरे को कर्तव्य है । मैं शुभ कर्म करूँगा तो पुण्य एवं नहीं करूँगा या निषिद्ध कर्म करूँगा तो पाप लगेगा तथा मैं उपासक हूँ राम कृष्ण, विष्णु, शंकर आदि मेरे उपास्य है इससे भिन्न वे

मेरे कर्मों के द्रष्टा एवं फल, प्रदाता है । इस भेद बुद्धि एवं अज्ञान से ही कर्म या उपासना होती है । उपरोक्त दोनों प्रकार के भ्रम 'मैं ब्रह्म हूँ' 'अहं ब्रह्मास्मि' इस अद्वैत निष्ठा को नष्ट करने वाले है एवं अपने में कर्तव्य बुद्धि तथा परमात्मा में फल प्रदायक भेद बुद्धि करने वाले होने से कर्म–उपासना ज्ञान के विरोधी है ।

'द्वितीया द्वै भयं भवति', 'परधर्मों भयावह'

यह द्वैत भाव ही जन्म–मरण रूप बन्धन का कारण है ।

प्रारब्ध कर्म में एकता नहीं

ज्ञानवान तथा अज्ञानी के जीवन का प्रवर्तक उसका प्रारब्ध कर्म है जिसके अतिरिक्त अन्यथा करने की सामर्थ्य किसी की नहीं है।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानापि ।
प्रकृति यान्ति भूतानि नग्रिहः किं करिष्यति ।।

३/३३

सभी प्राणी अपनी–अपनी प्रकृति अर्थात् प्रारब्धानुसार देह एवं कर्म भोग प्राप्त करते हैं । राजा जनक, महर्षि वशिष्ठादि की तरह प्रारब्ध के परवश हुए वे कर्म में प्रवृत्ति होते हैं । तथा कर्म–उपासना से निवृत्ति शुकदेव, वामदेव, जड़ भरत आदि के जीवन में दिखाई पड़ती है । फिर इसमें कोई किसी के जीवन को अन्य के लिये प्रमाण रूप कैसे कह सकेगा ? ज्ञानी अज्ञानी सभी अपनी प्रवृति अनुसार प्रवृत्ति या निवृत्ति के मार्ग को ग्रहण करते हैं। जिसका भोग प्रधान प्रारब्ध जन्म के समय निश्चित हो चुका है वह ज्ञान होने पर भी उस प्रारब्ध कर्म से प्रेरित हो उसकी उस भोग की इच्छा एवं उसे प्राप्त करने के साधन में चेष्टा भी होगी। तथा जिसका निवृत्ति प्रधान प्रारब्ध है उसको भोग में ग्लानि तथा जीवनमुक्ति हेतु सहज समाधि की इच्छा एवं प्रयत्न होंगे। चंचल मन में आनन्दातुभूति नहीं होती है। अतः जीवन्मुक्ति की इच्छा वाले ज्ञानी को ब्रह्माकार वृत्ति की आवृत्ति निमित्त वेदान्त अर्थ का चिन्तन ही कर्तव्य है। ब्रह्मआनन्दानुभूति अन्तःकरण की एकाग्रता मात्र से तो होती नहीं है

वह तो ब्रह्माकार वृत्ति से ही होती है । ब्रह्माकर वृत्ति अद्वितीय वेदान्त चिन्तन से ही होती है कर्म या उपासना से नहीं ।

इस प्रकार–दृढ़ ज्ञानी के लिये किंचित् भी कर्तव्य नहीं । अदृढ़ ज्ञानी जिसे मंद बोध हुआ है, वह भी मनन और निदिध्यासन का ही अधिकारी है । कर्म और उपासना का तो उसे सर्वथा त्याग ही कर देना चाहिये । किन्तु दृढ़ ज्ञानी के लिये मनन, निदिध्यासन भी कर्तव्य रूप नहीं है । ज्ञान का दृष्ट फल मोक्ष एवं कर्म–उपासना का अदृष्ट फल स्वर्गादिक लोक है । वह उसे अपने ब्रह्मनिष्ठा रूप में प्राप्त ही है फिर वह किस उद्येश्य से कर्म उपासना करेगा ?

अदृष्ट फल – जिनका फल प्रत्यक्ष नहीं अपितु शास्त्र द्वारा जाना जाता है जैसे पुण्य–पाप, स्वर्ग–नरकादि, इसलिए पूजा, तीर्थ, व्रत, यज्ञादिक का फल अदृष्ट है ।

दृष्ट फल – जिसका फल बिना शास्त्र के प्रत्यक्ष प्रतीत हो उसे दृष्ट फल कहते हैं । जैसे भोजन के उपरान्त तृप्ति, सूर्योदय से अन्धकार नाश, अग्नि से उष्णता इसी प्रकार ज्ञान से समस्त चिंताओं, बन्धनों से छुटकारा एवं परमानन्द स्वरूप की सोऽहम्, शिवोऽहम् रूप अनुभूति दृष्ट (प्रत्यक्ष) फल है ।

जो अपने आत्मा में बन्ध एवं मुक्ति हेतु साधन कर्तव्य मानता है, वह अज्ञानी ही है । ऐसा भ्रान्त अज्ञानी ही वेदान्त तत्त्व के श्रवण, मनन का अधिकारी है, क्योंकि आत्मा नित्य मुक्त एवं मुमुक्षु का स्वरूप ही है ।

यही चिन्ह अज्ञान को जो माने कर्तव्य ।
सोई ज्ञानी सुधार नर नाहिंताकु भवितब्य ।।

ज्ञानी के लिये कर्तव्य नहीं

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', **'अयं आत्मा ब्रह्म'** यह आत्मा ब्रह्म रूप है एवं स्वर्ग–नरक, पुण्य–पाप अधिष्ठान आत्मा में मिथ्या कल्पित है। मिथ्या कल्पित वस्तु आत्मा को विकारी नहीं बना सकती है। जैसे स्वप्न में राजा भिखारी होने से भी जाग्रत में उसके वैभव ऐश्वर्य में कोई न्युनता नहीं होती है। समस्त शुभ अशुभ का कर्ता अन्तःकरण है, वह अन्तःकरण स्वयं मिथ्या है, अतः न कर्ता सत्य है न उसके कर्म एवं न उसका फल ही सत्य है। जब पुण्य पाप ही नहीं तो उसके परिणाम स्वरूप सुख–दुःख, बन्ध–मोक्ष, स्वर्ग–नरक भी नहीं है। बन्ध भ्रान्ति से पूर्व भी आत्मा नित्य मुक्त है उसका ब्रह्म से कभी भेद नहीं है मठाकाश से महाकाशवत् अभिन्न ही है ! जब बन्ध सत्य नहीं, जगत् ही सत्य नहीं जीव सत्य नहीं, तब मोक्ष भी कहाँ है ? दृश्य ही असत्य है तब द्रष्टा कहाँ सत्य होगा एवं साक्ष्य ही नहीं तो साक्षी नाम भी कल्पना मात्र है। अज्ञान हो तब उसका नाश ज्ञान से हो किन्तु अज्ञान ही नहीं तब उसका नाशक ज्ञान भी कहाँ है। इस प्रकार एक अखण्ड ब्रह्मनिष्ठावान् ज्ञानी के लिये किसी प्रकार के साधन की कर्तव्यता नहीं, **'तस्य कार्यं न विद्यते'** ।

अस्तु मुमुक्षु उपरोक्त गुप्त ज्ञान श्रवण, मनन करके ''मेरे को यह करने योग्य है'' यह कर्तव्य बुद्धि का त्याग कर साक्षी द्रष्टा भाव में विचरण करे । यह लोक तथा परलोक भ्रम तो जल में भासमान तरंगवत मिथ्या है । अतः उसे पाने हेतु मेरे लिये किंचित् भी कर्तव्य नहीं है। आत्मा में बंध नहीं इसलिये मोक्ष निमित्त भी कर्तव्य नहीं। इस प्रकार

आत्मा को नित्य मुक्त ब्रह्मरूप जानने से सभी कर्तव्यता का मन से नाश होकर जीव निष्क्रिय ब्रह्म स्वरूप विदेह मोक्ष को प्राप्त हो जाता है ।

यद्यपि ज्ञान से पूर्व भी आत्मा नित्य मुक्त अखण्डानन्द रूप ब्रह्म है । परन्तु ज्ञान से पूर्व जीव अपने को कर्ता–भोक्ता मिथ्या मानकर उसके सुख प्राप्ति एवं दुःख निवृत्ति, बन्धनाश एवं मुक्ति प्राप्ति हेतु अनेक साधन कर महान क्लेश को प्राप्त होता रहता है ।

जब पूर्व या इस जन्म के पुण्य कर्म फल स्वरूप कोई वेदान्त केसरी श्रोत्रिय–ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु वेदान्त महावाक्यों का जिज्ञासु को उपदेश करते हैं तब उन वेदान्त महावाक्यों के श्रवण, मनन द्वारा अपने को ऐसा दृढ़ता से जानना कि मैं ब्रह्म हूँ, यही अपरोक्ष ज्ञान है । सोऽहम् यह अपरोक्ष ज्ञान का हेतु महावाक्य ही है । **अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म** यही जानना वेदान्त श्रवण, मनन निदिध्यासनादिक का फल है । ब्रह्म की प्राप्ति मुक्ति की प्राप्ति वेदान्त श्रवण का फल नहीं है । अतः नित्य–मुक्त आत्मा के मोक्ष की प्राप्ति एवं नित्य निवृत्त बन्ध की निवृत्ति ही वेदान्त का प्रयोजन है । जीव की संसार बन्धन से ज्ञान द्वारा मुक्ति इस प्रकार समझे –

जैसा कोई बन्ध्या का पुत्र सीप की चांदि लेकर गन्धर्व नगर में होवा, बाउ (बच्चों के डराने हेतु कल्पित नाम) पर बैठ जा रहा था । तब वहाँ उसे रास्ते में महान् भयानक अन्धकार शत्रु दिखाई पड़ा । उसने खरगोश के सींग को तीर बनाकर इन्द्र धुनष पर चढ़ाकर उस अन्धकार शत्रु को मार, मरुस्थल की नदी में स्नान कर स्वप्न के मिष्ठान्न द्वारा भूख निवृत्त कर आकाश में रस्सी बांध झुले पर सो गया अर्थात् यह सब न कुछ थे न कुछ हुआ । सब कल्पना भ्रम मात्र है । इसी प्रकार ज्ञान से जीव का बंध नाश है ।

तात्पर्य यह कि झुठे जीव ने झुठे संसार बन्धन से छूटने हेतु झुठे गुरु को पुकारा तब झुठे गुरुने झुठे शास्त्र प्रमाण से उसे झुठे बन्धन से मुक्ति दिलाई ।

जगत् का उपादान कारण अज्ञान है, अज्ञान का ज्ञान से नाश हो जाने से कार्य जगत् का नाश भी स्वतः हो जावेगा । क्योंकि कारण के नाश होने के बाद कार्य की स्वतन्त्र प्रतीति नहीं रह सकेगी । उस अज्ञान का नाश केवल ज्ञान द्वारा ही हो सकेगा । ज्ञान बिना अज्ञान का नाश कभी किसी अन्य साधन द्वारा नहीं होता । जैसे प्रकाश के बिना अन्धकार का नाश कभी नहीं होता है ।

''ऋतेः ज्ञानात् न मुक्ति''

अज्ञान का नाश कर्म–उपासना द्वारा कभी संभव नहीं है क्योंकि अज्ञान का विरोधी ज्ञान है, कर्म–उपासना नहीं ।

जैसे गृह में अंधकार हो जाने पर उसे किसी अन्य क्रिया द्वारा दूर नहीं कर सकते हैं केवल प्रकाश ही एकमात्र अंधकार का विरोधी है । इसी प्रकार अज्ञान रूपी अंधकार का ज्ञानरूपी प्रकाश ही निवर्तक है । कर्म तथा उपासना तो स्वयं अज्ञान से ही सम्पादित होती है, वह अपने कारण अज्ञान का नाश कभी नहीं कर सकेगी । जो वस्तु जिसके अज्ञान से प्रतीत होती है वह प्रतीति उसके वास्तविक रूप के पहचानने से ही दूर होती है । जैसे सीप में भ्रांति रजत (चाँदी) अधिष्ठान सीप के ज्ञान से दूर होती है । मंद अंधकार में पड़ी रस्सी में सर्प भ्रम केवल रस्सी अधिष्ठान के ज्ञान द्वारा ही दूर होगा । इसी प्रकार आत्मअज्ञान से जीव, जगत्, ईश्वर की भ्रांति आत्मज्ञान से ही दूर होती है और किसी भी प्रकार के कर्म–उपासना योगादि साधन करने से नहीं । उस आत्मज्ञान को प्राप्त करने हेतु जिज्ञासु को सद्गुरु की शरण में जाना पड़ता है ।

मिथ्या प्रतीति की निवृत्ति हेतु अधिष्ठान के ज्ञान की ही आवश्यकता होती है अन्य साधन की आवश्यकता नहीं । जीव, जगत् परमात्मा में परमार्थ से नहीं है किन्तु आत्मा की ब्रह्म रूप से अखण्ड, सर्वव्यापक रूप से निष्ठा नहीं होने से अज्ञान वश आत्मा में मिथ्या

जगत्, जीव की प्रतीति होती है । जैसे आकाश में नीलिमा, स्वप्न जगत, मरूस्थल में जल मिथ्या भासते हैं उसी प्रकार आत्मा में जन्म–मृत्यु, आवागमन, बन्ध–मोक्ष, सुख–दुःख, कर्ता–भोक्ता धर्मों की मिथ्या प्रतीति हो रही है ।

मिथ्या भ्रान्ति की निवृत्ति हेतु मिथ्या साधन की ही आवश्यकता होती है, सत्य साधन की नहीं । जैसे–स्वप्न की भूख को स्वप्न के भोजनसे ही दूर कर पाते हैं, जाग्रत जगत् के पदार्थो से स्वप्न की भूख या रोग दूर नहीं हो सकते ।

आपस में सम सत्ता ही साधक एवं बाधक होती है विषम सत्ता साधक बाधक नहीं होती ।

स्वप्न के रोग एवं जाग्रत की औषध तथा डॉक्टर की विषम सत्ता है इसलिए सहायक साधन नहीं हो सकते, अथवा स्वप्न धन द्वारा जाग्रत की गरीबी दूर नहीं हो सकती । क्योंकि स्वप्न की प्रातिभासिक सत्ता है एवं जगत् की व्यवहारिक सत्ता है इसलिये परस्पर विरोध होने से सहायक नहीं है।

जाग्रत की प्यास एवं मरूस्थल का जल की विषम सत्ता है, इसलिये वह प्यास बुझा नहीं सकती।

इसी प्रकार जीव के संसार बन्धन भ्रम एवं सद्गुरु ज्ञानोपदेश की सम सत्ता होने से जीव का बन्धन भ्रम केवल सद्गुरु उपदेश द्वारा ही दूर हो सकता है, अन्य साधन की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि यह सिद्धान्त है कि जिनकी आपस में सम सत्ता होती है अर्थात् जो एक कालिक एवं दैशिक होते हैं उनकी ही आपस में साधकता और बाधकता होती है, विषम सत्ता की नहीं । अस्तु भव दुःख और गुरु उपदेश की सम सत्ता होने से उनके उपदेश से भव बन्ध भ्रम दूर हो सकता है, अन्य साधन से नहीं, क्योंकि आत्मा में बन्धन होता तो वह कदापि ज्ञान द्वारा

दूर नहीं होता । इसीलिये अज्ञानकृत बन्धन की निवृत्ति हेतु वेद एक मात्र साधन ज्ञान ही बताता है **'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'** ।

'' ज्ञानादेव तु कैवल्यम्''

आत्मज्ञान से दुःखों की निवृत्ति

सभी प्राणी चाहता है हमारे समस्त दुःखों की कारण (बीज) सहित निवृत्ति हो एवं अखंडानन्द की प्राप्ति हो जावे । इसलिये सब जीवों की एक समान इच्छा को ही परम पुरुषार्थ रूप मुक्ति कहते हैं । इस मुक्ति की प्राप्ति हेतु वेद का उद्घोष है कि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती ।

'ऋतेः ज्ञानात् न मुक्तिः'

क्योंकि सब शरीर पुण्य एवं पाप से होते हैं । अधिक पुण्य से जीव देवयोनि में एवं अधिक पाप से जीव पशु, पक्षी, कीट, पतगांदि योनि में जन्म ग्रहण करते हैं । पुण्य–पाप सम होने पर मनुष्य योनि प्राप्त होती है । पाप का परिणाम दुःख सभी को सब योनियों में भोगना पड़ता है चाहे वह अधिक पुण्य कम पाप रूप देव योनि हो या ज्यादा पाप कम पुण्य रूप पशु कीटादि योनि हो । देह धारण के लिये तीन गुण एवं पांच महाभूत आवश्यक है । इनके बिना देह की स्थिति नहीं इसी प्रकार पाप–पुण्य भी देह धारण का कारण है इसके बिना किसी का शरीर नहीं । तात्पर्य यह निकला की जब तक देह है तब जीव को जन्म–मरण कर्म दुःख सहना ही होगा । देह रहने तक दुःखों की निवृत्ति भी नहीं हो सकती ।

अस्तु हमारे दुःखों का कारण शरीर एवं शरीर का कारण कर्म, कर्म का कारण राग–द्वेष है । राग–द्वेष का कारण व्यक्ति वस्तु में अनुकूल

तथा प्रतिकूल भावना है यह मेरे सुख का हेतु है अनुकूल, यह मेरे दुःख का हेतु है प्रतिकूल भावना भेद बुद्धि के लिये होता है। क्योंकि जिसको हम अपने स्वरूप से भिन्न विजातीय मानते हैं उसके प्रति हमारे मन में अनुकूलता या प्रतिकूलता रूप भेद ज्ञान उत्पन्न होता है। जिस शरीर को हम अज्ञानता से मैं मान बैठे हैं उसमें खाते समय यदि जीभ दाँतों द्वारा कट जावे या हाथ से अपने पैर पर पत्थर गिर जावे तो भी हम, दाँत व हाथ के प्रति प्रतिकूल भाव कर दंड नहीं देते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि अन्य के प्रति अनुकूलता, प्रतिकूलतों भेद ज्ञान से उत्पन्न होता है । अपने आप में तो भेदज्ञान नहीं, इसलिये समस्त देह संघात् में किसी भी क्रिया में प्रतिकूल भाव नहीं होता है। अब यह भेदज्ञान अपने अपने अंखड, अद्वितीय, व्यापक निराकार आत्म स्वरूप के अज्ञान से उत्पन्न होता हैं। यह स्वरूप का अज्ञान सद्गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त किये बिना किसी अन्य साधन से दूर नहीं हो सकता। जैसे रस्सी के अज्ञान से उत्पन्न सर्प भ्रम बिना प्रकाश दूर नहीं होता है, वैसे ही आत्म स्वरूप का अज्ञान अपने स्वरूप के ज्ञान से ही निवृत्त होगा। अपने आपको पहिचानने को ही आत्म ज्ञान कहते है। तात्पर्य यह है कि आत्मज्ञान द्वारा ही जीव मुक्ति का अनुभव कर सकता है। मुक्ति अनुभव या परमानन्द अनुभूति हेतु आत्म ज्ञान के अलावा कर्म, उपासना, योगादि कोई भी स्वतंत्र साधन समर्थ नहीं है।

इससे सिद्ध हुआ कि आत्म ज्ञान द्वारा आत्मा का अज्ञान नष्ट हो जाने से भेद ज्ञान द्वैत भाव की निवृत्ति हो जाती है । क्योंकि जब तक द्वैत भाव संसार के प्रति या भगवान के प्रति जीव के मन में बना रहता है तब तक वह जीव जन्म–मरण के भय से मुक्त नहीं हो पाता है ''**द्वितीया द्वै भयं भवति**'' । भेद ज्ञान के नष्ट होने से ही अनुकूल प्रतिकूल ज्ञान निवृत्त हो जाता है। अनुकूल तथा प्रतिकूल ज्ञान के नष्ट होने से ही राग–द्वेष

बुद्धि प्राणियों के प्रति समाप्त हो जाती है। राग द्वेष की निवृत्ति हो जाने से पुण्य–पाप रूप कर्म की निवृत्ति हो जाने पर शरीर की निवृत्ति हो जाती है। शरीर की निवृत्ति से समस्त दुःखों से छूटकारा प्राप्त हो जाता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि आत्म ज्ञान से ही समस्त दुःखों से छुटकारा एवं अंखडानन्द की प्राप्ति सम्भव है, कर्म या उपासना से नहीं।

ज्ञान बिना नहीं पावे मुक्ति
ज्ञान बिना नहीं मुक्ति रे ।
प्रकाश बिना तम नहीं जावे
नहीं ज्ञान बिना अज्ञान रे ।
द्वैत भाव से भय नहीं जावे
अद्वैत ज्ञान निदान रे ।। १ ।।
जैसे रज्जू अधिष्ठान पर
होवे सर्प का भ्रम रे ।
लेकर दंड़ उसे मारना
व्यर्थ का है यह श्रम रे ।। २ ।।
तैसे कर्म से होवत नाहीं
जीव का बन्धन नाश रे ।
गुरु कृपा से साक्षी जानकर
छुटे भव भय पाश रे ।। ३ ।।
मन बुद्धि कोऊ जान ना पावे
नहीं पावे एकान्त रे ।
मन का साक्षी है वह आतम्
वेद का है सिद्धान्त रे ।। ४ ।।
आवागमन से छूट न पावे
करलो बहुतक भक्ति रे ।
कहे निरंजन यह वेद वचन है
ऋतेः ज्ञानात् न मुक्तिः रे ।। ५ ।।

कर्म से संसार बन्धन

आत्म ज्ञानी के तो द्रष्टा साक्षी, असंग भाव रूप ज्ञानाग्नि से समस्त संचित, क्रियमाणादि कर्म भस्म हो जाते हैं । उसके देह रहने पर्यन्त उससे हुए कर्म भी उसे भावी (आगामी) जन्म के हेतु नहीं होते हैं; क्योंकि कर्म कर्ता और फल ये तीनों आत्मा में वास्तव में नहीं है, केवल अज्ञान से कल्पित है । उस अज्ञान का सद्गुरु द्वारा प्राप्त आत्मज्ञान से नाश हो जाता है तब उसके जन्म एवं भोग भी समाप्त हो जाते हैं । पुण्य-पाप ही जब शेष नहीं तब उसे कौन सुख दुःख पहुँचा सकेगा ? कोई नहीं । सभी शुभाशुभ कर्म ज्ञानाग्नि में भस्म हो जाते हैं इसलिये ज्ञानी को पुर्नजन्म की प्राप्ति अज्ञानी की तरह नहीं होती है ।

निष्काम कर्म करने वाले का अन्तःकरण शुद्ध हो जाने पर उसने ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लिया तब तो ठीक है । यदि ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो उसके कर्मफलानुसार अवश्य ही लोकान्तर व देहान्तर की प्राप्ति होगी । क्योंकि कोई कर्म निष्फल नहीं जाता है । केवल ज्ञानी के ही कर्म अकर्म रूप निर्बीज हो जाते हैं । नित्य तथा नैमित्तिक कर्मों का फल पाप की अनुत्पत्ति नहीं, किन्तु उनका फल स्वर्ग ब्रह्मादिक है न कि मोक्ष ।

नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प-कोटि-शतैरापि

यह शास्त्र सिद्धान्त है कि सैकड़ों कोटि कल्प बीत जाने पर भी कोई कर्म कर्ता को बिना फल दिये नष्ट नहीं होता ।

तात्पर्य यह है कि निष्काम कर्म से चित्त शुद्धि द्वारा ज्ञान प्राप्ति परम्परा से तो मोक्ष के साधन होते हैं । किन्तु साक्षात् ज्ञान का साधन

तो केवल वेदान्त श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा ब्रह्माकार वृत्ति ज्ञान ही है। जैसे अन्धकार निवृत्ति में प्रकाश ही एकमात्र साक्षात् साधन है दीपक, तेल बत्ती तो उसके परम्परा से प्रकाश प्रकटाने में बहिरंग साधन है।

दोउ हत्या से बचना साधो,
दोउ हत्या से बचना रे ।
जीव ब्रह्म रूप वेद कहत है
ब्रह्म से भिन्न नहीं जीव रे
ब्रह्म से भिन्न तू जिसे मानत
ब्रह्महत्या इसे जानो रे ।
दोउ हत्या.....

अपने को जो देह रूप मानत
आत्महत्यारा उसे जानो रे
इन दो हत्या से जो मुक्त हुआ है
साक्षात् ब्रह्मरूप जानो रे ।
दोउ हत्या.....

सियाराम मय सब जाग प्यारे
फिर शत्रु किसे तू माने रे
मन वच कर्म से सेवा करना
प्रभो भक्ति यह जानों रे ।
दोउ हत्या.....

स्वामी निरंजन रचित ग्रंथावली

१. शान्तिपुष्प
२. भूली बिसरी स्मृति
३. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी–१
४. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी–२
५. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी–३
६. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी–४
७. मैं अमृत का सागर
८. मैं ब्रह्म हूँ
९. प्राणायाम,मुद्रा, ध्यान एवं वेदान्त पारिभाषिक शब्दकोश
१०. सीता गीता
११. राम गीता
१२. गुरु गीता
१३. पंचदशी प्रश्नोत्तर दीपिका
१४. भागवत रहस्य
१५. आत्म साक्षात्कार
१६. मन की जाने राम
१७. योग वशिष्ठ सार
१८. निरंजन भजनामृत सरिता
१९. स्वरूप चिन्तन
२०. कर्म से मोक्ष नहीं (नई संस्करण)
२१. श्रद्धा की प्रतिमा सद्गुरु
२२. अमृत बिन्दु
२३. उपनिषद् सिद्धान्त एवं वेदान्त रत्नावली
२४. सहज समाधि
२५. ज्ञान ज्योति
२६. कबीर साखी संकलन
२७. सहज ध्यान
२८. हे राम ! उठो जागो
२९. सद्गुरु कौन ?
३०. श्रीराम चिन्तन
३१. तत्त्वमसि
३२. साक्षी की खोज
३३. आत्मज्ञान के हीरे मोती
३४. अनमोल वचनामृत
३५. लाख रोगों की एक दवा
३६. हंस गीता
३७. आत्मज्ञान के लिये उपयोगी चित्रावली
३८. अष्टावक्र गीता सार
३९. अष्टाबक्र महागीता
४०. आत्म गीता (भगवद् गीता सार)
४१. शिव गिता सार
४२. आत्म प्रबोधक संहिता
४३. ज्ञान विना मोक्ष नहीं

(उडिआ भाषा में) :

१. मुँ अमृतर सागर
२. मुँ ही ब्रह्म
३. मन कथा जाणे राम
४. सीता गीता
५. आत्म साक्षात्कार
६. वेदान्त शब्दकोष...
७. अमुल्य वचनामृत
८. सहज समाधी
९. सहज ध्यान
१०. हंस गीता
११. श्रीराम चिन्तन
१२. लक्षे रोगर गोटिए औषध
१३. निरंजन महाभागवत
१४. आत्म गीता (भगवद् गीता सार)

(मराठी भाषा में) :

१. होय ! मी ब्रह्म आहे

पूज्य स्वामीजी के अमृत प्रवचन तथा आत्मज्ञान पर आधारित भजनों का कैसेट एवं सि.डि उपलब्ध है

Visit us at : www.niranjanmission.org

अधिक जानकारी तथा ग्रन्थ प्राप्ति के लिये सम्पर्क करें :
प्लट नं : **58/60**, दिव्य विहार, सामन्तरायपुर, भुवनेश्वर–2 (उड़िशा)
फोन नं : **(0674) 2340136, 9437006566**